

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178970

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83.1/S53B Accession No. G.H. 204

Author आसा, शिशु - 1

Title बाली प्रतिमा / 1937

This book should be returned on or before the date last marked below.

D

1	Dadu Dayal ke Shabda	.	0	12	0
2	Dadu Dial ki Bani	.	0	8	0
3	Dak-ghar	.	0	5	0
4	Dali ka Yog	.	1	0	0
5	Dayanand Digvijai	.	4	0	0
6	Dehati Samaj	.	2	0	0
7	Desi aur Vilaiti	.	2	8	0
8	Deonagar Yernmala	.	0	10	0

Carried over

--	--	--

बोलुली श्रुतिमा



लेखक
श्रीराम शर्मा



प्रकाशक
हिन्दी-साहित्य-सदन, किरथरा
मकवनपुर, ई० आई० आर०

प्रकाशक
हिन्दी-साहित्य-सदन
किरथरा
मक्सवनपुर, (ई० आई० आर०) मैनेपुरी



मुद्रक
श्री० पं० यज्ञदत्त शर्मा
प्रभाकर प्रेस,
आगरा ।

कथा-सूची



बोलती प्रतिमा	३
ठाकुर की आन	३१
हरनामदास	४५
गीली लकड़ियाँ	७५
वरदान	८१
पीताम्बर	८६
वसीयत	१०१
फ़ीरोज़ाबाद की कालकोठरी	१२१
अपराधी	१३५
चन्दा	१५६
रतना की अम्मा	१६१
इकाई का सौदा	१७३
शीर्षकहीन कहानी	१८६
‘ऐमुन तैमुन’ और ‘तिरकिटता’	२११
इदन्नमम	२२१



प्रस्तावना



लेखक के पन्द्रह लेख—कहानियाँ और स्कैच—पाठकोंके सामने हैं, 'बोलती-प्रतिमा'के नामसे । यह बात नहीं कि लेखकने और कहानियाँ नहीं लिखीं । शायद दस-बारह कहानियाँ और भी लिखी हैं, पर वे मिल न सकीं । और उनके न मिलनेका कोई विशेष दुःख नहीं, क्योंकि समाचारपत्रोंके कार्यालयोंमें जाकर पुरानी फाइलें ढूँढनेसे वे मिल भी जातीं तो पुस्तकका कलेवर बढ़ जाता और लेखकके दृष्टिकोणसे—कला और उपयोगिताकी दृष्टिसे इन चुने हुए लेखोंसे वे आगे न बढ़ पातीं ।

इन पंक्तियोंके लेखकका स्पष्ट मत है कि साहित्यमें वही चीज टिकाऊ होती है जिसमें कला और उपयोगिताका समन्वय होता है । आत्मा और शरीरका जब तक समन्वय नहीं होता तब तक संसारके विचित्र प्राणी मनुष्यकी सृष्टि नहीं होती और इसी प्रकार जब तक कला और उपयोगिताका संगम नहीं होता तब तक उच्चकोटिका साहित्य भी लोकोपकारी नहीं होता । कला-

के हम कायल हैं । कलाकार और कला मानव-समाजकी विभूतियाँ हैं, और कलाकी उन्नति हमारा ध्येय होना चाहिए ठीक आत्मिक उन्नतिकी भाँति ।

क्योंकि जीवनके विकासमें आत्मिक उन्नति पशुतासे मनुष्यत्वकी ओर ले जाती है; पर कोरी कला—कला कलाके लिए—और कोरी उपयोगिता—प्रत्येक चीजको उपयोगिताकी कसौटी पर कसनेकी प्रवृत्ति ठीक वैसे है जैसे आत्माकी उन्नतिको बालाएताक़ रखकर प्रेतात्माकी उन्नतिका खयाल करना—पत्तोंके ढेरको पेड़ समझना । प्रेमचन्दजीके शब्दों में 'कलाका रहस्य है कृत्रिमता; पर वह कृत्रिमता जिस पर यथार्थताका आवरण पड़ा हो । कलाविद् अपने उद्देशकी पूर्तिके लिए कुछ तोड़-मरोड़ करता है, कुछ घटाता है, कुछ बढ़ाता है, कुछ छिपाता है, कुछ खोलता है, तब उसका मनोरथ सिद्ध होता है ।'

लेखकको कलाविद् होनेका दावा नहीं और वह अपनी चीजके बारेमें परिचयके अतिरिक्त अधिक कुछ नहीं लिखता । हाँ, लिखनेका शौक़ लेखकको ज़रूर रहा है । कहानियाँ और स्कैच लिखनेकी उसकी प्रवृत्ति यह रही है कि जब तक उसके दिलपर चोट नहीं पहुँची, जब तक उसे कोई मनोवैज्ञानिक सत्य नहीं मिला और जब तक उसे भीतरी प्रेरणा नहीं हुई तब तक उसने कोई कहानी या स्कैच नहीं लिखा । प्रतिकूल परिस्थितियोंसे युद्ध करनेकी प्रवृत्ति ही जीवन है और जीवन एक कहानी

है जिसकी गति नदीके प्रवाहके समान घटती-बढ़ती रहती है ! उसका एक-एक अंग सामने आता है, और कहानी भी मनुष्यके जीवनके एक अंगका चित्रण है ।

× × ×

× × ×

× × ×

‘बोलती प्रतिमा’--मन्दिर की प्रत्येक प्रतिमा बोलती और सजीव है । हाँ, ‘गीली लकड़ियाँ’ और ‘ऐमुन तैमुन तिरिकिटता’ मनोवैज्ञानिक सत्यपर आधारित होते हुए भी लेखकके कल्पना रूपी ताने-बानेसे बनी हुई हैं । शेष सब लेखों-स्कैचों और कहानियों की सामग्री लेखककी अनुभूति ही समझना चाहिए । कठोर सत्य तथा संघर्ष, लेखककी मार्मिक वेदना, जीवनके घात-प्रतिघात और मानसिक द्वन्द्वका रूप ही शब्दोंमें है ‘बोलती प्रतिमा’ । यदि इस संग्रहको माला मान लिया जाय तो बोलती हुई प्रतिमा इस मालाकी सुमेरु है । ‘बोलती प्रतिमा’—स्व० भाई जगन्नाथ इसी लोकका एक प्राणी था और एक पहेली—ब्रह्मका एक विचित्र रूप—रोगी, उपकारी, अचल सजीव प्राणी, भाई, मातृरूप, दोस्त और एक रहस्य । ठाकुरकी आन एक सत्य घटनाके आधारपर है । नाम और स्थान बदल दिये गये हैं । ‘हरनामदास, अब भी जीवित है और ‘हरनामदास’ को पढ़कर पूज्य द्विवेदीजी भी चकित रह गये थे ।’ ‘वरदान’ के पात्र पर तो एक सुन्दर उप-न्यास लिखा जा सकता है और उनकी लगन साधना और सेवा।

इस काटिकी है कि हममें बहुत-से उनकी पदरज से पवित्र हो सकते हैं। 'पीताम्बर' का पंचभूत-अम्बर नष्ट हो गया, पर उसकी धवल कीर्ति अबभी कायम है। किसी भी लेखकके आन्तरिक द्वन्द्व, क्लेश और युद्ध-प्रवृत्ति जन्य विचारों का फल है— उसकी वसीयत। 'फ़ीरोज़ाबाद की काल कोठरी' के बारेमें कुछ लिखूँगा। वह तो हमारे जीवन की एक कालिमा है और मनुष्यता के पाठ पढ़ानेके लिए उसे अन्तिम सबक होना चाहिए। उसने दिल पर क्लेश का नासूर पैदा कर दिया है और फ़ीरोज़ाबाद के कारख़ानोंकी चिमनियां उसी वेदनामें अपने हृदय से आह-सी उगल रही हैं।

'अपराधी' के मुक़दमेकी कार्यवाही अस्त्रचारों तकमें न निकली, वह भी क़ानून का शिकार था। 'चन्दा' अपनी गरीबीके पथपर अबभी चला जा रहा है। 'रतना' की अम्मा कमानसी बनी पिसाई-कुटाई करके अपने दिन बिता रही है।

'इकाई का सौदा'—का पात्र संकटप्रसाद अपनी धुनमें मस्त है, अपनी कहानी तुकबन्दीमें सुना-सुनाकर लोगोंको आह्लादित और आकर्षित करता है। 'शीर्षकहीन कहानी' ज़मींदारी प्रथाके दोषोंका जीता-जागता प्रमाण है। मूल घटना पर— घटनाके कनवास पर—स्थानीय रंग चढ़ाकर उसे साहित्यिक रूप दे दिया गया है। नाम और स्थान बदल दिये हैं। इदन्नमम एक रूसी पात्रका सजीव चित्रण है।

‘बोलती प्रतिमा’ की भूमिका श्रद्धेय पं० जवाहरलालजी नेहरू लिखने वाले थे । पुस्तककी प्रति भी उनके पास भेज दी गई थी, पर राष्ट्रीय कार्योंके करते रहनेके कारण पण्डितजीकी अवकाश नहीं मिला और भूमिका के लिए उन पर जोर देना देश पर ज्यादाती करना होता । इसलिए उनसे फिर खासतौर से कुछ न कहा गया ।

कोई पूछ सकता है कि बोलती प्रतिमाकी कहानियां और स्कैचों की क्या विशेषता है ? इसका उत्तर पाठक स्वयं दें । मैं तो केवल इतना ही कहूंगा कि यदि प्रस्तुत पुस्तकसे पाठकोंकी कुछभी मानसिक वृत्ति हो सकी ; उनके विचारोंमें तनक भी जागृति होसकी और उनके भावोंमें कुछभी सजीवताके अंकुर उग सका, वेदना और मनोवैज्ञानिक विश्लेषणसे उनके दिल पर सीधी चोट लग सकी, सहानुभूतिके भाव जाग सके और दम्भ, उत्पीड़न, अत्याचारके प्रति उनमें विद्रोहकी अग्नि सुलग सकी तो लेखक समझेगा कि वह अपने प्रयत्नमें सफल हुआ और उसके टूटे-फूटे शब्द कुछ कामके निकले । इस पुस्तककी शैली और लेखन-कला पर पाठक ही अपना निर्णय करें ।

किरधरा
३-६-१९३७ }

श्रीराम शर्मा



चित्रण

रङ्ग के चित्र लिखना—लेखनीको सहायतासे ज्यों-का-त्यों चित्र खींच देना—कोई आसान काम नहीं। इसके लिए लेखकको कठोर साधना करनेकी जरूरत पड़ती है। जहाँ रंगके थोड़े गहरे या किंचित् हल्के होनेसे ही तसवीर बिगड़ सकती है, वहाँ तूजिकाको कितनी सफाई, कितने चातुर्यके साथ चलाना चाहिए, इस बातका अन्दाज़ कोई कुशल चित्रकार ही लगा सकता है। इसके लिए सरस्वतीके मन्दिरकी आराधना तो अनिवार्य है ही ; पर साथ-ही-साथ अपने व्यक्तित्वको सजीव बनाये रखना भी अत्यन्त आवश्यक है। जिस आदमीको जीवनके विविध अनुभव प्राप्त नहीं हुए, जिसने आँखें खोलकर दुनिया नहीं देखी, जिसे कभी जीवन-संग्राममें जूझनेका मौका नहीं मिला, जो संसारके भले-बुरे आदमियोंके संसर्गमें नहीं आया, मनोवैज्ञानिक घात-प्रतिघातोंका जिसने अध्ययन नहीं किया और जिसने एकान्तमें बैठकर जिन्दगीके भिन्न-भिन्न प्रश्नों-पर विचार नहीं किया, भला वह क्या सजीव चित्रण कर सकता है ? पर इसके साथ-ही-साथ भाषाको भी संस्कृत करनेकी नितान्त आवश्यकता है। सभी अनुभवों आदमी अपनी अनु-

भूतियोंको यदि लिख सकते, तो साहित्य-क्षेत्र आज प्रतिभाशाली लेखकोंसे भरे हुए दीख पड़ते ।

व्यक्तित्वका विकास और भाषाका संस्कार (Culture) साथ-ही-साथ चलना चाहिए । यद्यपि हम इस बातको मानते हैं कि पहली चीज़का दूसरीपर अत्यन्त प्रभाव पड़ता है ; पर दूसरी उपेक्षणीय हर्गिज़ नहीं । सफल चित्रण इन दोनोंके सामंजस्यपर निर्भर है ।

हिन्दीमें स्केच लिखनेकी कलाका अभी प्रारम्भ ही हुआ है । स्वर्गीय पं० पद्मसिंह शर्मा (सम्पादकजी) ने इस विषयमें पथ-प्रदर्शकका काम किया था । 'पद्मपराग' के कई स्केच लाजवाब बन पड़े हैं । भावोंके साथ भाषाका ऐसा मेल बहुत ही कम देखनेमें आता है । स्वर्गीय सम्पादकजीके बाद यदि किसीने इस विषयमें थोड़ी-बहुत सफलता प्राप्त की है, तो वे हैं 'बोलती प्रतिमा' के सुलेखक श्रीयुत श्रीराम शर्मा । वे इस विषयमें स्व० पं० पद्मसिंहके असली उत्तराधिकारी हैं । जिस समय 'वशाल-भारत' में श्रीरामजीके शिकार-सम्बन्धी स्केच निकल रहे थे, उस समय पूज्य पण्डितजीने इन पंक्तियोंके लेखकको लिखा था—
 "श्रीरामजी तो उत्तरोत्तर ग़ज़ब ढा रहे हैं । बन्दूकसे बढ़कर इनकी लेखनीका निशाना बैठता है, पढ़नेवाला तड़पकर रह जाता है । नज़रसे बचानेके लिए इनके डंडपर भैरवजीका गंडा बाँव दीजिए ।"

स्वर्गीय पं० पद्मसिंहजीने अनेक बार श्रीरामजीकी शैलीको 'सजीव', उनके भाव-विश्लेषणको 'मनोविज्ञान-सम्मत' और भाषाको 'विषयके अनुरूप' बतलाया था। 'बोलती प्रतिमा' नामक पुस्तकने श्रीरामजीकी इस ख्यातिको, जो उन्होंने शिकार-सम्बन्धी स्केच लिखकर प्राप्त की थी, और भी बढ़ाया है। 'बोलती प्रतिमा' का हम इसलिए और भी स्वागत करते हैं कि वह लेखकके जीवनके मुख्य पहलूपर प्रकाश डालती है। अब तक लोग श्रीरामजीको 'शिकारी' ही मानते रहे हैं, यद्यपि श्रीरामजीको अपने इस परिचयसे सख्त नफरत है; पर इसमें दोष उनका भी है। वर्षोंसे वे अपने कितने ही अच्छे-अच्छे लेख बिना नामके अथवा उपनामसे छपाते रहे थे, और इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि लोग उनके व्यक्तित्वका यथोचित अनुमान नहीं लगा सके।

'बोलती प्रतिमा' की प्रथम कहानी 'बोलती प्रतिमा' को पढ़कर रशियन कलाकार तुर्गनेवकी 'A Living Relio' (प्राचीनकालकी एक जीवित यादगार) की याद आती है। इस कहानीमें श्रीरामजीने अपने अनुज स्वर्गीय जगन्नाथ शर्माका जो चित्रण किया है, वह हिन्दी-साहित्यमें एक अनोखी चीज़ है। इस स्केचमें निस्सन्देह उनकी कलाका सर्वोत्तम विकास दीख पड़ता है।

(घ)

“ मसहरीके भीतर एक अचल शरीर चित्त पड़ा था । टोंगे सुकड़ी और इतनी पतली, मानो पतले बाँसोंपर खाल चढ़ा दी गई हो, और हाथ पौनी-से पतले । छाती इतनी भीतरको घुसी हुई कि पीठ से लगी हुई और इतनी गहरी कि उसमें सेर-दो-सेर अन्न भरा जा सकता था । हाँ, उस चेहरेमें दो आँखें ही थीं, जिनकी पुतलियाँ चलती थीं और जिनके चलनेसे उस अचल शरीरकी स्वाभिमानी आत्मा आँखोंके आस-पास कहीं उलझी मालूम होती थी । हाथोंकी उँगलियाँ कभी-कभी हिल जाती थीं : पर उनमें इतनी गति नहीं थी कि वे किसी चीज़को उठा सकें । उस जीवित शवको देखकर मुझे बड़ी दया आई, और क्षमा माँगनेके रूपमें मैंने कहा—‘मेरे कारण आपको कोई कष्ट हुआ हो, तो माफ़ कीजिए । मुझे नहीं मालूम था कि आपको इतना कष्ट होगा ।’ ” (बोलती प्रतिमा)

भाई जगन्नाथको हमने अपनी आँखोंसे देखा था और उनकी स्मरणशक्ति तथा प्रबन्धपटुताको देखकर हम आश्चर्यमें पड़ गये थे । चौदह वर्ष तक उन्होंने जो घोर तपस्या की थी, उनका शब्दों द्वारा वर्णन करना असम्भव है ।

‘बोलती प्रतिमा’ की तरह ‘फ़ीरोज़ाबादकी काल-कोठरी’ में भी शर्माजीकी लेखनीका चमत्कार दीख पड़ता है । डाक्टर जीवारामजी, जो अपने बच्चोंके साथ उस मृशान्त हत्याके शिकार हुए थे, शर्माजीके चचेरे भाई थे । जिस

समय शर्माजी प्रश्न करते हैं—“क्या निर्दोष बच्चोंके वध और विधवाकी आहोंमें कुछ शक्ति है ? क्या वे पुरअसर हो सकती हैं और पुरअसर होकर विघ्न-बाधाओंको चीरती वे क्या हमें उस आदर्शपर ले जा सकती हैं, जहाँसे हम मभ्यताका पहला पाठ, मानवताकी अ आ. इ ई, सीख सकें—आदमीको आदमी समझें ? हमें तरस आता है मुस्लिम युवकों पर ! क्या वे इतने कायर हैं ? क्या वे इतने पतित हो गये हैं कि उन्हें अपने देश और मानवताका कुछ खयाल नहीं है ? ... हिन्दू, मुसलमान और नौकरशाही तनिक हमें बतायें—हमें न बतायें. तो बिलखती विधवाको, उसके विछुड़े पति और बिलखकर प्राण देनेवाले बालकोंकी खातिर ही बतायें कि फ़ीरोज़ाबादके मुसलमानोंने इतने निर्दोष मानवी पुतलोंके खूनसे अपने हाथ क्यों रंगे हैं ?” उस समय सरकार और मुसलमानोंके लिए सिवा इसके कि वे लज्जासे सिर झुका लें और कोई चारा नहीं ।

लेखककी सहृदयता और उनके सात्विक क्रोधका अनुमान निम्न लिखित पंक्तियोंसे लग सकता है—

‘ जेठकी दुपहरीमें, जब पशु-पक्षियोंने पेड़ोंकी शरण ले ली थी, मैं पक्षी सड़कसे घरकी ओरको लपका जा रहा था । कोई आध मील ही जाना था, और ऊसरमें होकर था रास्ता । दूरसे कुदालीकी आवाज सुनाई पड़ी । मैंने सोचा कि ऐसा कौनसा पागल है, जो लूमें कंकड़ खोद रहा है । खयाल किया, कोई

(च)

कामचोर ठेकेवाला होगा, जो प्रातःकाल तक सोता होगा और दोपहरको काम करता होगा। पास आया, तो चौंककर खड़ा हो गया। शीघ्र ही पालागनसे अभिवादन हुआ।

‘अरे चन्दा, मरेगा क्या ? जीव-जन्तु घबराकर पेड़ोंके नीचे हैं, और तू दुपहरी अपने ऊपर काट रहा है !’—मैंने भर्त्सनाकी भावनासे कहा।

‘पंडितजी, मरना तो है ही। मेहनत करके क्यों न मरूँ ? लाया और आराम पशु-पक्षियोंको बदा होगा। यहाँ तो भाग्यमें बहर भी नहीं।’—वेदना मिश्रित मुसकानसे चन्दाने कहा।

लँगोटा पहने, नंगे शरीर, नंगे पेर और कुशलीके सहारे चन्दा खड़ा था। उसकी दग्ध आत्मा उसके रोम-रोमसे प्रस्फुटित होकर जमींदारी-प्रथाको शाप दे रही थी। मैं दो मास उपरान्त गाँवमें आ रहा था। चन्दाकी बेदखली और परेशानी सुनकर हृदयको एक चोट लगी। मन-ही-मन मैंने कहा कि चन्दा कंकड़ों का गड्ढा नहीं खोद रहा है, वरन् जमींदारी-प्रथाकी कब्र, जिसमें, यदि अत्याचारकी यही गति रही तो, जमींदारी-प्रथाकी पूतना गड़ जायगी। ‘अरे, तू दो-चार धड़ी नाज मेरे भाई जगन्नाथसे ले आता।’—मैंने शिकायतन कहा।

‘माँग-जाँचकर कब्र तरु काम चलाता ? ले तो आया था; पर फिर दुबारा जानेकी हिम्मत न हुई।’—चन्दाने नीचा सिर करके कहा।

(छ)

मैं—‘चल मेरे साथ ! पहले खाना खा और घरवालोंको आटा-दाल पहुँचा ।’

चन्दा—‘सो परिडतजी, आपका ही खाना हूँ । आज ही ठेका लिया है । कंकड़ खोदकर ठेकेदारको दिखाना है, नहीं तो ठेकेदार निकाल देगा ।’

मैं—‘चल ठेकेदारसे मैं भुगत लूँगा ।’

घर आकर चन्दाको खाना खिलाया । उसकी पेटकी ज्वाला का बस चलता, तो पेट फाड़कर निकल पड़ती और सब खाना खा जाती । पानी पीकर चन्दा कुछ लेटा और अरहरकी दाल और आटा लेकर घर पहुँचा ।”

जरा आगेका दृश्य देखिये —

“घरमें तीन थालियाँ, एक बटलोई और एक कटोरा था । दोनों बहुओंने एक थालीमें भोजन परोसा । चन्दाने अपनी थालीमें एक वालिशत ऊँची रोटियाँ परसीं । उसकी माँने पानी रखकर कौर तोड़ा । एकआध रोटि ही वे लोग खा पाये होंगे कि एकदम चन्दाके मकानमें बीसों आदमी भर गये । वे कुर्कीवाले और जमींदारके गुर्गे थे । भूखे कुटुम्बके सामनेसे परसी थालियाँ पकड़ ली गईं । एक ओरसे परसी हुई थालियोंको स्त्रियाँ खींच रही थीं और दूसरी ओरसे जमींदारके गुर्गे । भूख और नृशंसतामें रस्साकशी थी । पीड़ित और अत्याचारीका युद्ध था । स्त्रियों और चन्दाके पेटमें छिपी भूखने तड़पकर अपनी सारी

(ज)

शक्ति हाथोंको दे दी। आँखों की ज्योतिने हाथोंको बिजली दी, और एक एक आदमी उन भुक्कड़ोंके हाथसे थालियाँ न छीन सका। तब और आदमियोंने औरतोंके हाथोंको एक ओरको खींचा और दूसरी ओरको थालियाँ खींची गई।”

ऐसे दृश्योंको देखकर बीसियों बार श्रीरामजीकी आँखोंमें खून उतर चुका है, और आज यदि उनकी भापामें ओज और शब्दोंमें ताकत है, तो वह इस प्रकारकी अत्यन्त कष्टप्रद अनुभूतियोंका परिणाम है। कोई साधारण मनुष्य—ब्रेपानीका आदमी इन दृश्योंको देखता, तो उसकी आत्मा और भी निर्जाब बन जाती, और वह यह कहकर अपने मनको समझा लेता—‘दुनियामें ऐसा होता ही रहता है, किस-किसके लिए रोया जाय?’ पर श्रीरामजी उन आदमियोंमें से नहीं हैं। उन दृश्योंने उनकी अन्तरात्माको प्रज्वलित कर दिया है। उन्होंने पिछले पन्द्रह वर्षोंमें अपने आस-पासके किसानोंको नैतिक बल देनेके लिए जो काम किया है, उसका वर्णन करनेके लिए यहाँ स्थान नहीं है।

अभी उस दिन एक महानुभावने एक मनोरंजक किस्सा सुनाया—“हमने अपने गाँवके लिए इक्का किया ही था कि इतनेमें दारोगाजीके सिपाहीने इक्केवालेको डाटते हुए कहा—‘कहाँ जाता है? चल बे, दारोगाजीने बुलाया है।’ इक्केवाला होशियार था प्रत्युत्पन्नमति था, तुरन्त ही बोला—‘मुझे चलनेमें कोई एतराज नहीं, पर पण्डितजीके गाँव किरथरे जा रहा हूँ।’

इसपर सिपाहीने भेंपकर कहा— तो जा, रहने दे । ” इक्केवाला अपनी सूझके कारण बेगारसे बच गया ! यह घटना श्रीरामजीके नैतिक प्रभावका अनुमान करानेके लिए पर्याप्त है । श्रीयुत ब्रेल्सफोर्ड जैसे संसार-प्रसिद्ध और सजीव पत्रकार भी, जो शर्माजीके ग्रामपर हो आये थे और आस-पास घूमे थे, शर्माजीके इस नैतिक प्रभावके कायल हुए थे ।

जोरदार भाषा लिखनेके लिए प्रकृतिसे निकट संसर्ग तथा किसानों-मजदूरोंसे सम्पर्क कितना अधिक आवश्यक है, इसका हम लोगोंने अभी अनुभव ही नहीं किया । सौभाग्यसे दोनों ही चीजें वर्षोंसे श्रीरामजीको प्राप्त रही हैं । दर असल प्रकृतिने उन्हें शारीरिक तथा साहित्यिक अकाल मृत्युसे बचाया है । निम्न-लिखित वाक्य हमारे कथनका प्रमाण है—

“कई वर्षकी बात है । भाग्य-भँवरके थपेड़ोंसे व्याकुल, शरीर से क्लान्त और सम्बन्धियों तथा मित्रोंसे त्याज्य एक प्रकार से उपेक्षित और भुलाया हुआ—मैं कष्टोंके रसातलकी ओर धीरे-धीरे सरक रहा था । न कहीं आना था, और न कहीं जाना । लोग मुझे एक प्रकारसे भूल-सा गये थे । कष्टपीड़ित व्यक्तिको अनेक लोग मूर्ख और निकम्मा भी समझते हैं । मेरे प्रति कई एककी ऐसी धारणा थी—ऐसा मेरा खयाल था । मैं भी उनकी उपेक्षा करता था ; पर था मैं दुखी । उन दिनों कोई ऐसा साथी भी न मिलता था, जिससे मनकी व्यथा कहकर हृदयको कुछ

हलका कर सऊँ । पके आमकी भाँति भीतर-ही-भीतर घुला जाता था । कुटियाके आस-पास काफ़ी रौनक थी । पुराने मित्र—वृत्त—डालियों के संकेतसे बुलाते भी थे । मैं उधर जाता भी था, और वहाँ एकान्तमें अन्तर्मुखी दुःख तरल होकर आँखों को निस्तब्ध कन्दराके दो झरनोंके रूप में परिवर्तित कर देता था । फोड़ेके मवाद निकलनेसे जैसे कुछ चैन मिल जाता है, उसी भाँति तपियतमें कुछ हलकापन तो आ जाता था ; पर वहाँसे हटनेके बाद वह दिल का फोड़ा दुखकर भर जाता था । भरिया-फूटा फोड़ा कितना दुःखदायी होता है—विशेषकर मानसिक कष्ट-रूपा फोड़ा—इस बात को भुक्तभोगी ही महसूस कर सकता है । हर समय मेरे लिए वही रोना था, इसलिए मेरी दशा पिंजड़ेमें बन्द उस पत्नीकी-सी थी, जिसके लिए—

‘खिज़ा क्या फ़सले गुल कहते हैं

किसको कोई मौसम हो,

वही हम हैं, क़स है और

मातम बालोपरका है ।’

पर युद्ध करनेकी प्रवृत्ति, अथवा भगवान्‌की प्रेरणासे दृष्टि सर्वदा आशा-प्रभातकी ओर रही है ; इसलिए डेढ़ वर्ष उपरान्त उस अन्धकार-कालमें एक आशा-किरण दिखाई पड़ी, और सबसे पहले मैंने शिकार खेलनेका प्रोग्राम बनाया, और वह भी सात आठ दिनोंके लिए ।”

श्रीरामजीकी प्रभावशाली लेखन-शैली में टिहरीगढ़वालके वन्य प्रदेशोंका जितना हाथ है, उतना ही जमनाजीकी आसपास की भूमिका—खारोंका—है, और अपने शब्द-भण्डारके लिए वे जितने हिन्दी-उर्दू-लेखकोंके ऋणी हैं, उतने ही चन्दा, गोविन्दा तथा पीताम्बरके भी हैं। वन्य प्रदेशोंके भ्रमणने श्रीरामजीको प्राचीन कालके आश्रमोंका कायल बना दिया है, और वे इस बातको भलीभाँति समझ गये हैं कि भारतीय संस्कृतिका मूलस्रोत कण्व और विश्वामित्रके आश्रमों में ही था। एक जगह उन्होंने लिखा था—

“पड़ावसे पश्चिमकी ओर जानेमें कोई मगर न मिला। इतने तड़के वसन्त ऋतुमें मगर निकलते ही नहीं; पर मुझे तो शिकार के अतिरिक्त सैर और प्रकृतिदर्शनका शौक था। हमारे पूर्वज वन-जीवन-सेवनको जीवन और शिक्षा का मुख्य अंग समझते थे। राजा दिलीपकी गोरक्षामें पुत्रकी लालसा तो थी ही, पर साथ ही, लाभमें, उन्होंने जीवनके मूलमन्त्रको—सादे जीवनके रहस्य को—सीखा, और उस मन्त्रको जब उनके वंशजों ने भुलाया, तभी उनका पतन हुआ। कृष्णका गाय चराना और ईसा तथा मुहम्मद का भेड़-बकरी चराना गहरे मानी रखता है। मुझ जैसे क्षुद्र व्यक्तिके लिए भी वन-जीवन बड़ा लाभप्रद है। मैंने मनुष्योंके सामाजिक जीवनकी जड़ें पशु-पक्षी-जीवन में पाई हैं। वास्तविक जंगली व्यक्तिका मैं तो कायल हूँ। मैं इस

बातको मानता हूँ कि केवल षड्दर्शनसे मोहनके दर्शन नहीं होते ।
मैं तो वर्ड्सवर्थकी इस बात का कायल हूँ कि—

‘One impulse from vernal wood,
May teach you more of man,
Of moral evil and of good,
Than all the sages can.’

पर चाहिए आँखवाला । मैं भी कोई आँखवाला नहीं ; पर वह
अन्या हूँ, जिसको भाँई मारती है । पता नहीं, आगे और
खुलती हैं, या बन्द होती हैं । ”

निम्नलिखित वाक्योंकी सजीवताको देखिए—

(क) “गंगाकी सखी-सहेलियोंमें—सहायक नदियोंमें—यों
एक-से-एक बढ़कर और मदमाती हैं । चढ़नेपर—भरी जवानी—
बारसातमें उनके आनन्द-विभोर—उल्लास, नखशिख-सौन्दर्य,
आकर्षक और गजब ढानेवाली चंचलताकी कौन प्रशंसा करे ?
यमुनाकी ब्रजकेलियाँ, सरयूकी अठखेलियाँ, सरस्वतीकी अगोच-
रता और गदकारी, सोनभद्रका फहराता हुआ सुनहरा चीर देखते
ही बनता है ; पर रामगंगाका भृकुटि-विलास और भाव-भंगी
बेजोड़ ही हैं । गंगा महारानीकी किसी भी यौवन-मदमाती
सखीका यह ताव नहीं कि रिझानेकी किसी भी कला में रामगंगा
को हरा सके । गातकी मझोली, भावकी गम्भीर रामगंगाकी
बड़ा को बरेली, मुरादाबाद, शाहजहाँपुर, फर्रुखाबाद और

हरदोईके जिले में देखिये । हरित वृणोंकी झालरदार साड़ी पहने, उभरे गातसे, फुदकती और मचलती, मुड़-मुड़कर देखती और यौवन-बाढ़में अनेक मस्त वृक्षोंको बढ़ाती रामगंगा एक विचित्र ही नदी है । अनेक मकानोंको अपने गर्भमें रखती—भोजन-सा करती—मीलों तक खेतोंको जलमग्न करती, मानवी नई-नवेलियोंसे होड़ लगाकर वह गंगासे मिलने बढ़ती है । किसी-किसी गाँवके पास तो उसे पीहरकी याद आ जाती है, और लौट-लौटकर चक्कर लगाकर घायल साँपकी भाँति पलटा खाकर—कुछ ढूँढती-सी वह अपना मार्ग बनाती और गाँवको प्रायद्वीप बना डालती है ।”

(ख) “थके-माँदे शरीरमें नींदका नशा आ जानेसे रात ढलते फिर आँख खुलनेकी आशा न थी और पीसनेका ढेर रखा था । तोना घास भी न छील पाया था और प्रातःकाल गहरी ओस में घास छीलनेका सवाल ही न था, इसलिए आधा काम—पिसाई करना ही था, इसलिए चमेलीने अपनी चक्की चलाई । दो टोकनों-में गेहूँ भरे रखे थे । चक्की में कोर डालकर उसने पीसना प्रारम्भ किया । मनोव्यथाकी उपेक्षा करनेके लिए डढ़ेको दाएँ और बाएँ हाथसे बारी बारीसे पकड़कर चक्की चलाते हुए उसने गाया—

‘जंजारी जियरा

धधौ करत जनम योई गयो ।’

ऊपर आकाशका पाट अनेक नक्षत्रोंसे जटित संसारकी घड़ी अविचलित गतिसे चला रहा था । कटौराकी दीपावलीके दीये अभी बुझे नहीं थे । लोगोंने खील-बताशे अभी चाब नहीं पाये थे ।”

(ग) “जौनी वाकरकी बोतल खुली—घञ्च ; और गलेके नीचे वह पेय उतरा—गटर-गटर । आँखोंमें सुरूर, चेहरोंपर नूर और सामने सब साज-सामान । बस, आज्ञा हुई कि मुजरा जमे । पहले नाचका हुक्म हुआ और परमलू नाचका । उस्तादजीने पलथी मारे बैठकर हाथसे गति करते हुए बोल कहे—
‘तक कत तक दिग तक दिग गदि कत जगत कूक तक तक दिग तिं जय तग तरांग तग धिलांग धिधि धिन भभन नाड़ धिग भनन डान थू कतत कतत कत गिदिनाड़ ता धा ।’ ता धा की समाप्तिपर चौपालकी धूमिल ज्योतिमें विजली-सी चमकी और विद्युत-गतिसे नर्तकी ने न-मालूम कितने चक्कर काटे और एकदम ऐसे रुकी कि उसकी भाव-भंगी और रुकनेसे ता धाका ब्रेक लग गया । ‘वाह-वाह’, ‘खूब-खूब’की ध्वनि और सिर झुकाकर प्रशंसा-स्वीकृतिके उपरान्त गानेका नम्बर आया । तबला ठनका ‘धा धी धीना नाधी धीना, नातीतीना, नाधीधीना’, और हारमो-नियमपर उँगलियाँ चलीं स ग म प नि ध नि स स नि ध प म ग रे स और अधखुले नेत्रों, गोरी उँगलियोंसे लटको संभालकर तिरछी चितवन और हाथको आगे बढ़ाकर उसने खम्माच रागमें गाया—

राजा जानी मारो ना नयनवाँके तीर ।

वाह-वाह ! बढ़ी रहो । क्या कहने ! शराब और गानेमें ब्राह्म-
मुहूर्त हो गया ।”

श्रीरामजीकी त्रुटियाँ

हम पहले लिख चुके हैं कि श्रीरामजीके बाज्र-बाज्र स्कंच पढ़कर तुर्गनेवकी याद आ जाती है । इससे हमारा यह अभि-
प्राय हर्गिज नहीं है कि किसी भी अंशमें श्रीरामजीकी उस अमर कलाकारसे तुलना हो सकती है । ऐसा कहना कुफ़्र होगा । स्वयं श्रीरामजी संसारके उस सर्वश्रेष्ठ कलाकारका यह अपमान सहन नहीं कर सकते । उनकी सहज विनम्रता इस बातको कल्पनामें भी नहीं ला सकती । तुर्गनेव उन दृश्योंसे, जिनका वे चित्रण करते थे, अपनेको ऊपर उठाकर उनपर एक तटस्थ—
निरलस मनुष्यकी-सी दृष्टि डाल सकते थे ; पर श्रीरामजीके लिए यह असम्भव है । आँखोंसे ज़ुल्मोंको देखते हुए और कुछ अंशोंमें सहते हुए भी उनके लिए तटस्थ मनोवृत्ति रखना ना-मुमकिन है ।

उच्चकोटिके कलाकारके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह उपदेशक या प्रचारक न बन जावे । श्रीरामजी अपनी परिस्थितियोंके कारण कलाकी उस उच्चताको प्राप्त करनेमें असमर्थ हैं । अगर उनसे ऐसा कोई कहे भी, तो वे यही जवाब देंगे—
‘भाड़में जाय आपकी कला । मैं कलाकार बननेका दावा नहीं

(त)

करता । जो-कुछ दृश्य मैं नित्यप्रति देखता हूँ, उन्हींका चित्रण करता हूँ । यदि इससे मैं प्रचारक समझा जाऊँ, तो मैं कुरा नहीं माननेका । अन्यायके विरोधमें प्रचार करना मैं गौरवजनक ही मानता हूँ ।'

जहाँ चन्दा चमार जमींदारी-प्रथाकी पूतनाकी कब्र खोद रहा है, वहाँ वे निष्पक्ष दर्शककी भाँति खड़े नहीं रह सकते । खुद काँवड़ा लेकर पिल पड़ना चाहते हैं और फिर ऊपरसे ऐसी पक्की चिनाईभी करना चाहते हैं कि वह पूतना फिर न उठ बैठे । तुर्गनेव जहाँ इशारा-भर करके चुप रह जाते हैं, वहाँ श्रीरामजीको पाठकके दिमागमें कील ठोककर समझाना पड़ता है । एक और विषय है, जहाँ श्रीरामजी तुर्गनेवसे मीलों पीछे रह जाते हैं, वह है प्रेमका विषय । इस विषयमें वे बहुतकुछ प्राचीनतावादी हैं, और भारतीय सामाजिक परिस्थितियोंके कारण तथा अपने संकोचशील स्वभावकी वजहसे 'प्रेमपयोनिधि' में धँसनेकी उनकी हिम्मत ही नहीं हो सकती । रस तो क्या, वे रसकी भससे भी दूर रहना चाहते हैं । इसका परिणाम यह हुआ है कि श्रीरामजीकी रचनाओंमें कोमलता नहीं पाई जाती, जो अनुभवो कलाकारोंकी रचनाओंमें होनी चाहिए । पर कोमलता के इस अभावने उनकी रचनाओंको स्त्री पाठिकाओंके लिए और भी अधिक आकर्षक बना दिया है । 'शिकार' पढ़कर कुछ स्त्रियोंने जो प्रशंसात्मक चिट्ठियाँ शर्माजीको भेजी थीं, उनमें अत्युक्ति-अलंकारकी भरमार थी ।

(थ)

श्रीरामजीकी लेखन-शैलीकी लक्षप्रियताका एक कारण और भी है, वह यह कि वे अपनी रचनाओंमें मुक्त आकाश, स्वतन्त्र वायु तथा स्वाधीनता-प्रेमी पशु-पक्षियोंको खूब ला सकते हैं। लेखकके लिए यह आवश्यक है, कि बह पृथिवी, आकाश, जल, जन-समाज, पशु-पक्षी और वृक्ष इन सबसे सम्बन्ध रखे, और जैसा कि हम कह चुके हैं, श्रीरामजी इस बारेमें बड़े सौभाग्यशाली हैं। पशु-पक्षियोंके विषयमें तो इतना अच्छा ज्ञान बहुत कम हिन्दी-लेखकोंको होगा। ग्रामोंके सजीव शब्दोंका प्रयोग भी उनकी लेखन-शैलीको मनोरंजक बना देता है। उनकी 'पनपथी' की याद पूज्य द्विवेदीजी भी कर लिया करते हैं, और अभी उस दिन हमें एक ब्रजवासी कविवरका पत्र मिला, जिसमें उन्होंने श्रीरामजी द्वारा 'धौंदुआ' के प्रयोगपर अपना हर्ष तथा सन्तोष प्रकट किया था। हमें विश्वास है कि श्रीरामजी इस प्रकार कितने ही ग्रामीण शब्दोंको शुद्धकर भाषाकी बिरादरीमें मिला देंगे।

आजसे कई वर्ष पहले पूज्य द्विवेदीजीके दर्शनार्थ हम लोगोंने दौलतपुरकी तीर्थ-यात्रा की थी। उस समय द्विवेदीजीने मुझसे कहा था—'चौबेजी, इनसे (श्रीरामजीसे) हिन्दी लिखना सीखिये।' मुझे इस बात से अत्यन्त हर्ष हुआ था (इस खयालसे कि भाषा सीखनेके लिए मुझे घर से दूर नहीं जाना पड़ेगा) ; पर श्रीरामजी आचार्यजीकी इस प्रशंसासे बिलकुल भ्रम गये। पीछे उन्होंने मुझसे कहा—“पूज्य द्विवेदीजीकी इस

बातको अपने ही तक रखिये ।”

मुझे खेद है कि मैं उनकी इच्छाके विरुद्ध इस बातको आज उद्धृत कर रहा हूँ ; पर साथ ही यह भी कह देना उचित समझता हूँ कि श्रीरामजीकी भाषासे कहीं अधिक महत्त्व देता हूँ मैं उनके मनुष्यत्वको । उन-जैसे परदुःस्वकातर व्यक्ति हिन्दी-जगत्में विरले ही होंगे । यदि चार शब्दोंमें उनका परिचय देना हो, तो यह कहना काफी होगा कि ‘श्रीरामजी मर्द आदमी हैं’, और ‘बोलती प्रतिमा’ के प्रत्येक शब्दके पीछे उसी मर्दका एक अद्भुत अक्खड़पन है, स्वरी आवाज है और एक प्रबल आत्मा है, जो स्पष्ट शब्दोंमें अन्याय और अत्याचारको निरन्तर ललकार रही है ।

कलकत्ता
१-६-१९३७ }

बनारसीदास चतुर्वेदी

“श्रीयुत पण्डित श्रीराम शर्मा, बी० ए०, हिन्दीके साहित्याकाशमें उदीयमान एक नवीन नलत्रके रूपमें चमके हैं, जिन्होंने अपनी उज्ज्वल लेखन-प्रभाके चमत्कारसे पाठकोंको चकित कर दिया है। आप प्रसिद्ध और सिद्ध—अचूक निशाना लगानेवाले—शिकारी हैं। आपके लेखोंका निशाना भी सीधा पाठकों के हृदयोंपर जाकर बैठता है—पढ़नेवाला लोट पोट हो जाता है। अपने ढंगके आप एक ही लेखक हैं। हिन्दीमें शिकार-साहित्यका आपने सर्वथा नवीन निर्माण किया है। आप लेखोंमें शिकार—(वध्य-पशु) और शिकारीकी चित्त-वृत्तिका ऐसा जीता-जागता चित्र खींचते हैं कि देखकर सहृदय पाठक आश्चर्यचकित रह जाता है—लेखकका कलम चूमनेको जी चाहता है। कालिदामने मृगया की प्रशंसामें जो यह लिखा है—“सत्त्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमचितं भय-क्रोधयोः”—(“चित्तवृत्ति पशुनकी जानि परे भय क्रोधमें लेति लक्ष्यते भवे”)—उसको यथार्थताका पूर्ण परिचय आपके शिकार-सम्बन्धी लेखोंमें मिलता है। आपकी वर्णन-शैली बड़ी सही, भाव-विशेष मनो-विज्ञान-सम्मत और भाषा विषयके अनुरूप बड़ी सुझाव होती है। इस विषयपर ‘विशाल भारत’ में आपके दो लेख निकले हैं और निकल रहे हैं, वह साहित्यकी स्थायी सम्पत्ति हैं।”

स्वर्गीय पं० पद्मासिंह शर्मा

समर्पण

छोटे भाई स्वर्गीय जगन्नाथ शर्मा

‘बोलती प्रतिमा’

को



बोलती हुई प्रतिमा



वसन्तको ऋतुराज माननेका एक कारण कदाचित् यह भी हो कि उसके सुखद शासनमें न तो शीतका दौरात्म्य रहता है, और न गरमीकी उप्रता दिखाई देती है। समदर्शी नरेशकी भाँति ऋतुराज सभी प्रकृतियोंके लोगोंको—गरमी, जाड़ा और आर्द्रता पसन्द करनेवालोंको—समदृष्टिसे देखता है। जो सबको समदृष्टिसे देखे, वह मान्य—राजा—तो हुआ ही। शीतसे त्रस्त, कम्बल और रजाइयोंमेंसे सिर निकालकर चाय और हुक्का पीनेवालोंसे लेकर शीतकालके प्रेमियों तकके लिये वसन्त एक आदर्श ऋतु है। ऋतुराजकी छवीली छटाका प्रदर्शन होता है, उसके यौवनकालमें। यौवनके गुद-गुदाते ही बालाओंकी पगस्थित चंचलताके पैर उखड़ जाते हैं। वह ऊर्ध्वरेती होकर ललाटस्थित दो मैगझीनों—आँखों—में किलेबन्दी कर लेती है, और ऋतुराजमें जब यौवनकी आभा झलकती है, तब पेड़ और झाड़ियोंके आसपासकी चंचलता, इधर-उधरसे हटकर, उनकी आँखों—फूलों—में जा बसती है,

इसीलिए अनेक लताएँ और शाखाएँ, नवेलियाँ बनीं, फूलोंसे गुँथी बेनीको हिलाकर बहुतसे टहलनेवालोंको मोह लेती हैं। फिर वसन्तमें टहलनेवालोंकी संख्याका क्या ठिकाना ! वसन्तमें तो टहलनेवालोंकी—शहरके टहलनेवालोंकी—संख्या ऐसे बढ़ जाती है, जैसे बरसातमें नदियोंकी बाढ़।

रही उनकी बात, जो टहलनेके अतिरिक्त शिकारके भी शौक्तीन हैं; सो उनमेंसे बहुतेरोंको मटरगश्ती शिकारकी धुन सवार हो जाती है। मटरगश्ती शिकारमें शिकार खेलना ही मुख्योद्देश्य नहीं होता, वरन् टहलने और प्रकृति-निरीक्षण पर भी लक्ष्य रहता है। उस समय हाथमें बन्दूक या रायफल होती है, जेबमें कुछ कारतूस पड़े होते हैं। अनायास ही कोई चीज मिल गई, तो फायर कर दिया, नहीं तो घूम-घामकर घर लौट आये, या यदि शिकारके लिए कहीं पड़ाव पड़ा हो, तो वहीं लौट गये।

एक दिन मैं वसन्तकी तरुणाईमें मटरगश्ती शिकारको गया। बारह नम्बर की बन्दूक ले ली, और जेबमें छै-सात कारतूस ढालकर घूमने निकल पड़ा। मटरगश्ती शिकारीकी दशा वृष शेरकी-सी होती है, जो मस्त चालसे अपनी माँदकी ओर लौटता है, और घात लगाकर नहीं चलता। छोटा-मोटा शिकार मिल जानेपर भी वह उसकी ओर खूनी दृष्टिसे नहीं देखता, वरन् खटकेसे भागे हुए शिकारको देखकर यह कहता प्रतीत होता है—
‘जा चला जा, समझता होगा कि अपनी चालाकीसे बच

गया ।' अस्तु, घूमते-घामते मैं काफ़ी दूर निकल गया । ध्यान शिकारकी ओर तो था ही नहीं, खेतों और पेड़ोंपर ही विचार-बिन्दु एकाग्र हो रहा था, और रह-रहकर मनुष्यकी जुद्धता और बेशसीका खयाल आ रहा था । प्रतिवर्ष, कुछ पेड़ोंको छोड़कर, सभी पेड़ोंपर जवानी आती है, पुराने पत्तोंके स्थानमें नवीन चिकने पत्ते निकलते हैं । पेड़ोंकी नस-नससे जवानी बरसती है । किसी-किसी आमपर तो मोटी शाखासेभी बौर फूट पड़ता है । वसन्तमें हरसाल पेड़ोंका कायाकल्प होता है । उनकी सभी शक्तियाँ जाग्रत् हो जाती हैं । विशालकाय और गगनचुम्बी डेढ़-दो सौ वर्ष पुराने पीपलको वसन्तऋतुमें देखिये । नई, ओजपूर्ण और कोमल पत्तियोंसे सजा दूल्हा बना वह अपनी वार्षिक कायाकल्प-क्रियापर उतना ही मुग्ध होता है, जितना तीस-चालीस वर्षका पट्टा पीपल । पेड़ जब तक जीते हैं, तब तक वे प्रतिवर्ष युवावस्था प्राप्त करते हैं । बहुतसे पत्नी भी इस ऋतुमें जवान होजाते हैं । उनकी चाल-ढाल और बोलीसे जवानी टपकती है । क्या ही अच्छा होता, यदि मनुष्य भी पेड़ोंकी भाँति प्रतिवर्ष इसी ऋतुमें अपनी खोई हुई शक्ति पा सकता—कामुकता और लम्पटताके लिए नहीं, वरन् जीवनको अधिक सुखी बनानेके लिए । मनुष्योंकी अपेक्षा ये अचल प्राणी कितने अच्छे और कैसे भाग्यशाली हैं इस दृष्टिसे !

कई मील जा निकला ; पर बन्दूक चलानेका कोई अवसर ही न मिला । हिरन मिले, लेकिन सब छोटे ; बड़े हिरनकी

खोज करनेका विचार ही न था। मटरगश्ती शिकार ही जो ठहरा। फिर चारों ओर पड़ी वसन्तकी सेनामेंसे निकलकर एक हिरनके पीछे जाना कोई आसान काम न था, और तिसपर वसन्तके जादूकी लकड़ी हिरनोंपर भी फिरी हुई थी। दो घण्टे लगातार घूमते रहनेसे कुछ गरमी मालूम होने लगी। एक मील पीछे एक सुहावनी कुटिया छोड़ आया था। केले और पपीते के पेड़ कुटियासे ऊपर उठे दूरहीसे दिखाई पड़ते थे। गाँवसे लगी वह कुटिया बड़ी आकर्षक मालूम होती थी। वहाँ कुछ देर आराम करनेके विचारसे मैं लौट पड़ा। अब दार्शनिक उधेड़-बुन भी बन्द हो गई। लगातार चलनेकी गरमी और भूखने विचारोंकी परक्रेँच करके मानो कहा—

“ऐ दिल हवाए जुलक शिकन दर शिकन को छोड़ ।”

× × × ×

कुटियापर आया, तो चारों ओर शान्तिका राज्य दिखाई पड़ा। हाँ, कुटियासे लगे कुँएकी मनिपर कुछ कबूतर गुटर-गूँ गुटर-गूँ कर रहे थे। मेरी आहटसे किसीको कोई असुविधा न हो, इस खयालसे मैं दवे पाँव कुटियाकी ओर बढ़ा; पर मैं कुँ तक ही जा सका था कि कुटियाके भीतरसे किसीने कड़ककर पूछा—“कौन है ? ”

“कौन है ?” की ध्वनिसे मैंने समझा कि कुटियामें बैठा व्यक्ति मेरे आगमनको पसन्द नहीं करता, इसलिये मैं कुँके निकट ही ठिठक गया, और कुछ कहने ही को था कि कुटियासे

फिर आवाज आई—“अरे भाई, कौन हा ! बालत क्यों नहीं ? भीतर आओ ।” ये शब्द कुछ ऐसी दृढ़तासे कहे गये थे, मानो उन शब्दोंका कहनेवाला ऐसे प्रश्न करने का अभ्यस्त हो ।

“मैं एक यात्री हूँ.”—कहकर मैं आगे बढ़ा, और कुटियामें पहुँचकर इधर-उधर नजर दौड़ाई परन्तु वहाँ कोई आदमी दिखाई न पड़ा । कुटिया के बीचमें एक चारपाई बिछी थी । और उस पर मसहरी लगी थी ।

“आप कहाँसे आये हैं ? पानी पीना हो, तो बड़ कुरसी पड़ी है, उसपर बैठ जाइये, अभी कोई आदमी आता होगा पानी पिला देगा ।” ये शब्द मसहरी के भीतरसे किसीने कहे थे । पास जाकर देखा, तो मैं दंग रह गया । मसहरीके भीतर एक अचल शरीर चित पड़ा था । टाँगें सुकड़ी और इतनी पतली मानो पतले बाँसोंपर खाल चढ़ा दी गई हो, और हाथ पौनी-से पतले । छाती इतनी भीतर को घुसी हुई कि पीठ से लगी हुई और इतनी गहरी कि उसमें सेर दो सेर अन्न भरा जा सकता था । हाँ, उस चहरेमें दो आँखें ही थीं, जिनकी पुतलियाँ चलती थीं, और जिनके चलनेसे उन अचल शरीरकी स्वामिनी आत्मा आँखोंके आसपास कहीं उलझी मालूम होती थी । हाथोंकी उँगलियाँ कभी-कभी हिल जाती थीं ; पर उनमें इतनी गति नहीं थी कि वे किसी चीज़को उठा सकें । उस जीवित शवको देखकर मुझे बड़ी दया आई, और तत्मा माँगनेके रूपमें मैंने कहा— “मेरे कारण आपको कोई कष्ट हुआ हो, तो माफ

कीजिये । मुझे नहीं मालूम था कि आपको इतना कष्ट है ।”

रोगी—“अरे साहब, तो क्या हुआ ? बैठिये न । मेरे कष्टोंकी क्या बात है ? कोई दो-चार दिनकी बात थोड़े ही है ।”

मैं—“तो आप कबसे बीमार हैं ? ”

रोगी—“इन बातोंको न छेड़िये । शरीरं व्याधि मंदिरम् । आप सुस्ता लीजिये । कहाँ रहते हैं ? किधरसे आना हुआ ?”

मैं—“मुझे आप एक यात्री समझें । शिकार खेलनेके लिये इधर आया हूँ । आज टहलनेकी जीमें आगई, तो जिधरको मुँह उठा, उधर चल दिया । देखता-भालता इधर आ निकला ।”

रोगी—“तो आप शिकारी हैं ?”

मैं—“जी नहीं, पेशेसे शिकारी नहीं हूँ ; यों शिकारका शौक है, वैसे लिखने-पढ़ने—कलम घिसनेवाला आदमी हूँ ।”

रोगी— “तो फिर शिकार आपके लिये गुनाह बेलज्जतवाली बात है ।”

मैं—“कुछ समझ लीजिये ; पर····”

“कौन है, पाती ?” मेरी बात अधसुनी कर शैयाशायी रोगीने बाहरकी ओर कान लगाते हुए कहा ।

“हों पण्डितजी !” पातीने उत्तर दिया ।

“डोल मँजकर ताज्जा पानी कुएसे लाओ, और घर कह दो कि मेरे खानेके अतिरिक्त एक थाली और भी आयगी ।”—रोगी महाशयने सुप्रबन्धककी ध्वनि में कहा ।

अपनी बातके पुराने सिलसिलेको छोड़कर मैंने कहा—“आप को आखिर यह रोग क्या है, और कबसे है ?”

रोगी—“रोग क्या बताऊँ ? जब डाक्टरों और वैद्योंकी समझमें ही नहीं आता कि क्या रोग है, तब मैं क्या नाम बताऊँ ? बस, कर्म-भोग रोग समझ लीजिये ।”

मैं—“मालूम होता है, आपने इसका इलाज किसी अच्छे डाक्टरसे नहीं कराया ।”

रोगी महाशयकी आँखोंसे मैं ताड़ गया कि वे एक अपरिचित व्यक्तिके इस प्रकारके अशिष्टतापूर्ण प्रश्नों का—विशेषकर उनके यह कहने पर कि कर्म-भोग रोग है—पसन्द नहीं करते, इसलिये मैंने उत्तरकी प्रतीक्षा न करके वार्तालापकी दिशाको बदल कर कहा—“आपकी कुटिया तो आश्रम-सी है ।”

रोगी—“हाँ, आश्रम-सी तो है ही; पर आप यह क्या कहते हैं कि मेरी कुटिया ।”

मैं—“क्यों ? आपकी नहीं, तो किसकी है ? आप ही तो इसके मालिक हैं ?”

रोगी—“क्षमा कीजिए । ऐसा समझना भ्रम है । ऊपर देखिये, वह छिपकली दीवारपर बैठी है, यदि वह बोल सकती, तो मुझे विश्वास है, वह इसपर उतना ही अपना अधिकार समझती, जितना कि मैं । छप्परसे लगी बेलमें दूर्जी (फुटकी) पत्तीका जोड़ा प्रतिवर्ष घोंसला बनाता है, और अपने बच्चोंको इसी में पालकर बड़ा करता है । उनके गार्हस्थ्य जीवनके सुखको मैं

पड़ा-पड़ा यहींसे देखा करता हूँ। उन पत्तियोंका खयाल है कि यह कुटिया उनकी है। सामनेकी दीवार में प्रतिवर्ष लखैरियोंको भींगुर पकड़कर खींचते देखता हूँ, उनकी भी यही भावना हो सकती है कि यह कुटिया उनकी है। और भी ऐसे कितने ही प्राणी हैं, जो इस कुटियापर अपना इतना ही अधिकार समझते हैं। रही मेरे यहाँ पड़े रहनेकी बात, सो यह आवागमन तो बना ही रहता है। यह संसार-चक्र ऐसे ही चला करना है, और 'उसकी महकिलका कभी खाली मकौं होता नहीं।'

रोगी महाशयकी इस दार्शनिक वृत्तिपर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैं सोचने लगा कि आखिर वह कौन-सा विचित्र रोग है, जिसने उन्हें चारपाईपर कसकर रख छोड़ा है, और बुद्धिके विकास पर तनक भी आँच नहीं आने दी है। मैंने अब तक जितने भी प्रसङ्ग छेड़े उन सबको रोगी महाशयने बच्चोंकी-सी बातें समझा। जिधर भी मैं चलता, उधर ही मुझपर मात-सा हो जाता। मैं उनसे उनकी बीमारीके बारेमें पूछना चाहता था, और उन्हें बताना चाहता था कि वे किसी बढ़िया अस्पताल में जाकर अपना इलाज करावें। ढँगोंसे मालूम होता था कि उन्होंने गाँवकी जड़ी-बूटियोंके सहारे रहकर अपना रोग बिगाड़ लिया है; पर कुटियामें रखे अंगरेजी विश्वकोष तथा अन्य बढ़िया पुस्तकों और साथ ही रोगीकी विलक्षण बातोंसे मुझे अपनी आशंकापर भ्रम भी हो रहा था। फिर रोगीके सचेत मनको कैसे अपनी ओर करता। उठनेकी इच्छा न होती थी।

उधर खानेका अड़ंगाभी उन्होंने लगा दिया था। सच बात तो यह थी कि उस समय मैं भूखसे व्याकुल हो रहा था, और तबीयत करती थी कि खेतमेंसे पके टुमाटो तोड़कर खाऊँ। मैं कुछ सोच ही रहा था कि रोगीने बड़ी उत्सुकतासे पूछा—“आप किस स्कूलमें पढ़े थे ?”

पढ़ाई-लिखाई-सम्बन्धी प्रश्न होनेपर मैं बड़ा सतर्क हो गया। शिक्षा-सम्बन्धी दार्शनिक और व्यावहारिक बातोंपर मुँहकी न खऊँगा, इस खयालमे मैंने सूक्ष्म-सा उत्तर दिया।

“खुर्जा हाई स्कूलमें।”

“खुर्जेके किस हाई स्कूलमें ?”—रोगीने मेरी ओर आँखें गड़ाते हुए कहा।

“जे० ए० एस० हाई स्कूलमें।”

“किस सन्में ?”

“सन् १९१६ में।”

“अरे यार, यों क्यों नहीं कहते कि तुम हाकी के खिलाड़ी अमुक.....हो।”—रोगीने प्रफुल्ल होकर कहा। अपना नाम सुन कर मैं अवाक् रह गया, और कुरसीको कुछ पीछे हटाकर मैंने विस्मयसे पूछा—“क्या आप भी वहीं पढ़ते थे ? आपका नाम ?”

“मेरा नाम जगन्नाथ है।”

मैं—“बस, बस, मैं समझ गया। पं० जगन्नाथ शर्मा, और हेडमास्टर मि० माथुर के शब्दों में ‘मॉर्निंग पोस्ट’। पर-

मात्मा की अद्भुत लीला है, आज हम लोगोंका कैसा मिलन हुआ ! मैं तो आपको पहचान भी न सका । आपके कारण तो स्कूलकी साहित्य-सभामें जान-सी पड़ गई थी; पर भई जगन्नाथजी, यह तो बताइये कि आप कबसे बीमार हैं, और किसी बढ़िया अस्पतालमें दाखिल होकर अपना इलाज क्यों नहीं कराते ? लखनऊके मेडिकल कालेजमें मेरे एक रिश्तेदार हैं, वहीं किसी प्रकार चलो । मैं साथ चल कर सब प्रबन्ध करा दूँगा । बढ़िया डाक्टरोंके परामर्शसे इलाज होगा ।”

जगन्नाथ—“अच्छा, स्नान करो । मेरी कहानी लम्बी है । खाना खानेके बाद बातें होंगी ।”

x

x

x

x

पं० जगन्नाथने अपनी हार्दिक व्यथाको कुछ रोकते हुए कहा—“गत चौदह वर्षसे मैं बीमार हूँ, और तेरह वर्षसे इसी प्रकार इसी आसनपर पड़ा हूँ । पहलेके चार-पाँच वर्षोंमें हाथ-पैर कुछ काम करते थे । मैं उन्हें पसार भी लेता था; अब वे भी रुठ गये हैं । बीमारीकी क्या कहूँ ! पहले-पहल छाती पर कुछ छाले उठे । बस, जले के फफोले-से । सबका खयाल हुआ कि मकड़ी फर गई है, इसलिए घर पर ही साधारण दवा-दारू होती रही । मैं चलता-फिरता था । धीरे-धीरे छाले ऊपर को बढ़े, साल-भर के भीतर वे मुँह पर फैल गये । मुँह पर खुरंट-से पड़ गये । सन् १६२० में तो फफोलों का ऐसा प्रकोप हुआ कि सारे शरीर पर वे फैल गये । हथेली और पैरोंके

तलुओं तक पर वे निकल पड़े। मैं चारपाई पर गिर गया।

“आप इलाजकी कहते हैं, और डाक्टरी इलाजकी सिफारिश करते हैं? मैं अपने अनुभवसे कहता हूँ कि डाक्टरी इलाज इस गरीब मुल्कके लिए किसी प्रकार भी हितकर नहीं है। लोग विलायती कपड़ोंका तो वहिष्कार करते हैं, और इस प्रकार विदेशमें जाने वाले करोड़ों रुपयोंको बचाना चाहते हैं। परन्तु, कपड़ोंसे तो तन ही ढकता है, ओषधिका प्रभाव तो आत्मा पर भी पड़ता है। ओषधियोंके दाममें विदेश जाने वाले करोड़ों रुपयोंकी रोकके लिए आप क्या करते हैं? जितने भी डाक्टर हैं, वे स्वराज्य-प्राप्ति में बाधक हैं। परोक्ष रूपसे दूषित पूँजीवाद के समर्थक हैं। देशके सम्पत्ति-रूपी वृक्षके लिए दीमक.....”

मैं (बात काट कर)—“पर आपने उन देश-द्रोहियोंसे इलाज भी कराया? आपको मालूम होना चाहिए कि राष्ट्रकी आत्मा—हमारे सब कुछ—और संसारको झूठी सभ्यतासे मुक्त करने वाले महात्माजीके प्राण-रक्षक डाक्टर लोग ही थे; आयुर्वेद विशारद और होमियोपैथ नहीं।”

जगन्नाथ—“अच्छा, आपका खयाल है कि ‘अपैडिसाइटिस’ का आपरेशन करके महात्माजीकी जान ऐलोपैथ डाक्टरों ने बचाई? खूब! क्या कभी कोई व्यक्ति अपैडिसाइटिसका उचित आपरेशन होने पर भी नहीं मरा? गाँवमें कभी-कभी भयंकर रोग जादू-टोनाके विश्वाससे अच्छे हो जाते हैं, तो फिर क्या गाँव का जादू-टोना ऐलोपैथीसे बढ़ कर नहीं हुआ? सुनिये,

एक बार शिवाजी महाराजने अपने दान-पुण्यकी बड़ाई, दबी जवानसे, अपने गुरु समर्थ रामदाससे की। समर्थ रामदासको शिवाजीके उस कथनमें अहंकारकी गन्ध आई। शिवाजीको लेकर वे एक पत्थरके पास गये, और शिवाजीसे उस पत्थरको तुड़वाया। पत्थरके भीतर दराजमें बैठी एक मेंढकी निकली। उसकी ओर संकेत करते हुए समर्थ रामदासने कहा— 'क्या इसको भी तू खाना देता है ?' शिवाजी गुरुके चरणों पर गिर गये, और उनका अहंकार नष्ट हो गया।

“अस्तु, मैं तो अपनी बीती सुना रहा हूँ। आप बीतीसे ही मैं इस नतीजे पर आया हूँ कि डाक्टरी इलाज भारतवासियों के लिए शारीरिक और मानसिक दृष्टिसे हानिकर है। अंगरेजी इलाज शीतप्रधान देशोंके लिए ठीक हो सकता है। हम लोगोंके खूनमें शराबका प्रभाव बहुत कस क्या, है ही नहीं। एक कुनैनको ही लो। जेठ, आषाढ़में कुनैन खाओ, फिर देखो, कैसे उल्लू बनते हो। छोटे बच्चोंको कुनैन खिलाना उन पर अत्याचार करना है। मेरे एक भाई है, जो बचपनमें बड़े ही नटखट थे। कुनैनकी शीशी कुत्तेके मुँहमें उँडेल देते थे, फिर कुत्ते का लपर-लपर करके भाग डालना देखकर हँसा करते थे। हाँ, आप इंजेक्शनोंकी प्रशंसा करें, तो उसके लिए मैं कहूँगा कि इंजेक्शनोंने ही मेरी यह दशा कर रखी है। आगरेके अस्पतालमें मैं रहा, बड़े-बड़े योग्य डाक्टरोंने मुझे देखा, और कई बार खूनकी परीक्षा भी हुई। पहले तो हम लोगोंके पास

रुपया है ही नहीं; पर जोड़-तोड़ करके जर्मनीसे इंजेक्शन के ट्यूब मँगा-मँगाकर मेरे इंजेक्शन लगाये गये। मेरी टाँगों और बांहोंकी सब नसें फोड़ डाली गईं। सौके लगभग इंजेक्शन लगे; पर कुछ न हुआ, और रोग असाध्य कहकर उन्होंने मुझे छोड़ दिया। मेरे हाथ-पैर जो बेकार हो गये हैं, उसका मुख्य कारण है—इंजेक्शन द्वारा दी गई विषैली ओषधियोंकी प्रतिक्रिया।

“मैंने यूनानी इलाज भी कराया, और कराया हकीम अज-मलखाँसे। कुछ लाभ भी हुआ; पर बाद में बीमारीका प्रकोप होनेसे उनकी दवा कुछ न कर पाई। आयुर्वेदिक चिकित्सा भी हुई। सबसे पहले होनी चाहिये थी होमियोपैथी—वह हुई सबसे आखिर में! चिकित्सा अब भी होती है, बस, जी बहलाने को; पर जिसने रोग दिया है, वही भले ही अच्छा करदे। दैवी शक्तिका कोई अपमान नहीं कर सकता। यों तो प्रत्येक रोगकी दवा है, और अचूक दवा है; पर मौत की दवा नहीं है, और न हानी चाहिये।

“आप पूछते हैं कि अब क्या हालत है? सो क्या बताऊँ। शरीरका कोई भाग—आँखोंकी पलकें तक—ऐसा नहीं, जहाँ फफोले न हों। जुआरके बराबर फुन्सी उठती है, और रात-भरमें वही बड़ कर फफोला बन जाती है। एक ओरसे फफोले अच्छे होते हैं, और दूसरी ओर उठते आते हैं। सारे शरीर पर खुरण्टोंकी मोटी तह जमती जाती है, और खुरण्टोंके नीचे

का पीव, खूनको सुखाता जाता है। जब सब प्रयत्न निष्फल रहे, तब मेरा दृढ़ विश्वास है कि मेरा रोग कर्म-भोग रोग है, और पहले जन्मके पापोंका प्रायश्चित्त है। इस जन्ममें मैंने ऐसा कोई पाप नहीं किया, जिसका इतना विकट प्रायश्चित्त हो। मेरा यह भी खयाल है कि मेरे पूर्व जन्मके पापोंमें मेरे कुटुम्बी—विशेषकर माता और भाई—भी शामिल हैं। सम्भवतः मैंने किसी निर्दोषका बध किया हो, और मेरे कुटुम्बियोंने उसमें किसी प्रकार योग दिया हो, इसीलिए शायद सेवा-शुश्रूषा के रूप में वे भी अपना प्रायश्चित्त कर रहे हैं, नहीं तो मेरी समझमें नहीं आता कि मेरी बीमारी का क्या रहस्य है !”

मैं—“आप अविवाहित हैं न ?”

जगन्नाथ—“हाँ, किसी स्त्री से मेरा विवाह नहीं हुआ।”

मैं (मुसकरा कर)—“इसके क्या मानी ?”

जगन्नाथ—“इसके मानी यह कि मेरा विवाह तो हुआ है—स्त्रीसे नहीं, वरन् बीमारीसे। सो मेरी यह पतिपरायणा बीमारी संग सती होगी।”

मैं—“आपकी देखभाल और सेवा कौन करता है ?”

जगन्नाथ—“मेरे ऊपर सभी कृपा करते हैं। आपसे ही पानी माँगूँ, तो क्या आप मुझे पानी न देंगे ? भाई हैं, छोटे भतीजे हैं, भतीजियाँ हैं। अपने मा-बाप की अपेक्षा वे मुझे अधिक प्यार करते हैं।

मैं—“तो फिर आप किसी पर क्रोध तो नहीं करते होंगे,

और वर्षोंके ऐसे अभ्याससे आपसे क्रोधका अंश तो नष्ट ही हो गया होगा ?”

इस प्रश्न ने रोगी के मर्मस्थान पर चोट कर दी। उनकी आँखें छलछला आईं, और आँखोंमेंसे दो मोती—उनके सूखे और खुरण्ट-युक्त कपोलोंपर ढलक गये। मैं हकपका-सा गया। घबरा कर मैंने पूछा—“क्यों मुझसे ऐसी कौनसी धृष्टता होगई, जो आपको इतनी वेदना हुई ?”

जगन्नाथ (आँसुओं को रोकते हुए)—“आपसे कोई धृष्टता होती भी, तो मैं उसका खयाल नहीं करता। मेरा जीवन दूसरों पर आश्रित है, इसलिये मुझे तो सभीको प्रसन्न रखना पड़ता है। आपके प्रश्नसे मुझे माँका स्मरण हो आया। उनके देहावसानको अभी पाँच ही वर्ष बीते हैं। मैं भी क्रोध किया करता था। नाराज हुआ करता था और रूठ भी जाया करता था। किसपर ?—माँपर। सुबह-शाम पाखाना-पेशाब वही कराती थीं। वे बड़ी तपस्विनी थीं। अपने अध्यवसाय और घोर परिश्रम से उन्होंने हमें पाला था, प्रतिदिन प्रातःकाल तीन बजे उठतीं। वृद्धा हो गई थीं, परन्तु हम तीनों भाइयों में से कोई भी उन्हें सुख न दे पाया। घरका भी काम करतीं, और मेरी भी परिचर्या करतीं। कभी उनके आनेमें देर हो जाती, तो मैं उनसे बिगड़ पड़ता, और जब खाना लातीं, तब मैं रूठ जाता। वे मेरी इसी चारपाईकी पाटी पकड़कर बैठ जातीं, और मनाकर और पुचकारकर कहतीं—“ले बेटा, रोटी

खा ले । मुनुआँ रुठते नहीं हैं । खा ले । मेरे मरनेके बाद तुझे कोई नहीं मनायेगा । माँगेगा तो खाना मिल जायगा, नहीं तो मनानेवाला मेरे बाद कोई नहीं बैठा ।’ जब कभी मुझे कोई कष्ट होता है, और समयपर मेरा काम नहीं होता—न-जाने क्यों मेरी प्रत्येक बातका समय बँध गया है, और एक मिनटकी देरीमें कष्ट होने लगता है—तब मैं घबराकर चुपचाप रोने लगता हूँ, और माँकी यादमें हिलकी बँध जाती है । तब ऐसा प्रतीत होता है कि स्वर्गीया माँ ऊपर आकाशसे मुझे पुचकारकर सान्त्वना दे रही हैं । उस समय मुझे माँके ये शब्द ‘मेरे बाद मनानेवाला कोई नहीं बैठा’ स्मरण हो आते हैं, और माँकी औरभी याद आती है । आपके प्रश्नसे माँकी याद आ गई जिससे मेरा हृदय भर आया । रोकनेकी बहुत कोशिश की; पर बाँध टूट ही तो गया ।”

मैं—“तो क्या आपकी सेवा अब ठीक नहीं होती ?”

जगन्नाथ—“होती है; पर मुझे भाइयों, भावजों और नौकरों पर अब उतना अधिकार नहीं । अब ऐसा कोई नहीं, जिससे मैं रुठ सकूँ । मुझे अब इस बातका ध्यान रखना पड़ता है कि मेरी किसी बातसे कोई नाराज न हो जाय । पहले मुझमें बालकों की-सी सरलता थी, और अब बूढ़ोंकी-सी समझ, और चतुराई है । हाँ, बच्चोंपर शासन करता हूँ । वे अपनी सब शिकायत मुझसे ही करते हैं, ‘चाचा, हमें यह चाहिए । भैया मुझे मारता है । चाचा, तुम पड़े क्यों रहते हो ?’ बच्चों की ऐसी

बातोंसे मुझे आन्तरिक सुख मिलता है। मेरी भी अब यह दशा हो गई है कि जब बच्चे यहाँ खेलते-कूदते रहते हैं, तब मुझे अच्छा लगता है। उनकी बाल-लीला का आनन्द मैं पड़े-पड़े लिया करता हूँ। एक बच्चेको, जिसका प्यारका नाम पल्लू है, मैंने समझाया कि पल्लू, सवारी गाड़ी जब यहाँ होकर निकलती है, तब वह तुझे बुलाती है, और कहती है—‘पल्लू, तुम आइ जाउ; पल्लू, तुम आइ जाउ।’ पल्लू ढाई वर्ष का होगा, और उसने पूछा—‘चाचा, मोइ टेत्ति ऐ?’ मैंने कहा—‘हाँ, तुम्हें ही टेरती है और किसी को नहीं, और तू कह दिया कर—‘आजु तू चली जा, कल्लि हूँ आंगो।’ बस, अब जब कभी कोई सवारी गाड़ी निकलती है, तो पल्लू बोल उठता है—‘आजु तू चली जा, कल्लि हूँ आंगो।’ यदि कोई और बच्चा कह देता कि ‘कल्लि हूँ आंगो’ तो पल्लू रो पड़ता है, और कहता है—‘बु तौ मोइ टेत्ति ऐ।’ मुझे भी और बच्चोंसे कहना पड़ता कि रेल केवल पल्लू को बुलाती है। तब सब बच्चे—गाँव के और बच्चे भी—हरएक सवारी गाड़ी को देखकर बोल उठते हैं—‘आजु तू चली जा, कल्लि पल्लू आवैगौ।’

“एक दिन बड़ी मजेदार बात हुई। पल्लू साहब मचलकर रो रहे थे कि इतनेमें सवारी गाड़ी आ गई। फिर क्या था। अश्रु-बूँद विन्नियोंपर मोतियोंकी भाँति गुह कर रह गई, और पल्लू साहब लगे कहने—‘आजु तू चली जा, कल्लि हूँ आंगो।’ मैंने उस बाल-लीलामें तन्द-यशोदा का-सा सुख लूटा है।”

इन बातोंके दौरानमें एक आदमी कुटियाके सहारे आ खड़ा हुआ। जगन्नाथने उसकी ओर देखकर कहा—“कौन, मोहना ? मसहरीपर रुपये रखे हैं, उठा ले। इस महीने तक का तेरा हिसाब बेबाक हो गया।”

मोहना अपना मासिक वेतन लेकर चला गया, तब मैंने पूछा—“क्या नौकरों का वेतन आप ही देते हैं ?”

जगन्नाथ—“क्या बताऊँ। माँके स्वर्गवासके बाद घरका सारा प्रबन्ध मेरे ही ऊपर है—‘होम डिपार्टमेण्ट’ का इनचार्ज मैं ही हूँ। कोई भी नौकर अपना वेतन और किसीसे नहीं माँगता, सब मुझसे ही माँगते हैं। गाँवके आदमी यदि किसी चीजको माँगते हैं, तो मुझसे ही। घरके जो चलन चलते हैं, वे सब मेरे परामर्शसे। औरकी कौन कहे, मेरे भाई तक कोई चीज माँगते हैं, तो मुझसे। हमारे यहाँ एक बार एक अँगरेज सज्जन आकर ठहरे, तो कमोडका प्रबन्ध मुझे ही करना पड़ा।”

मैं (आश्चर्यसे)—“आपने कैसे किया ? क्या आपकी जान-पहचान आपके भाइयोंकी अपेक्षा अधिक है ?”

जगन्नाथ—“हाँ, इस इलाक़ेमें मेरा रुसूख बहुत है। बस, मैंने स्टेशनपर खबर कर दी, और वहाँसे ठेलेपर कमोड आ गया।”

मैं—“तब तो आपका समय किसी-न-किसी तरह कट ही जाता है।”

जगन्नाथ—“समय कटता नहीं है, बरन् वह हमें ही काटता है। आपकी दृष्टिसे विचार करनेपर भी यही कहना पड़ता है—

‘ऐ शमश्रु तेरी उम् तबई है एक रात ,

हँस कर गुज़ार या इसे राँकर गुज़ार दे ।’

फिर खास बात यह है कि बहुतेरे मुझसे भी खराब हालतमें हैं। उन्हें वे सुख प्राप्त नहीं, जो मुझे हैं। आप शिकार खेलते हैं, और घूमते हैं; पर इससे आप यह न समझें कि श्रवण और घ्राणशक्ति आपकी ही प्रबल हैं। चलने-फिरनेकी मेरी शक्ति क्षीण हो गई है। मैं इस योग्य भी नहीं कि रेल या मोटर में रखकर कहीं ले जाया जाऊँ, इसलिए मेरे कान, मेरी नाक और स्मरणशक्तिपर कुछ धार-सी धर दी गई है। पैरोंकी आहटसे मैं पहचान लेता हूँ कि कौन-सा परिचित व्यक्ति है। बकरी और बैल के खुरोंकी आहटसे मैं उन्हें पहचान लेता हूँ।

“आप खयाल करते होंगे कि घ्राणशक्ति किस प्रकार तीव्र हो सकती है। सुनिये, जब आमोंपर बौर आता है, तब किसीके बिना बताये ही मुझे मालूम हो जाता है कि आमोंपर बौर आ गया। पवनके मन्द-मन्द झोके जब चलते हैं, तब बौरकी मोहक गन्ध वायुके झकोरोंसे मेरे पास तक आ जाती है। पपीतोंसे आगे नारंगियोंके पेड़ देखिये। उनपर जब कलियाँ आती हैं, तब मैं यहाँ पड़े-पड़े मालूम कर लेता हूँ कि नारंगियोंके पौधोंपर फूल आ रहे हैं।”

मैं—“आपको किसी विशेष वस्तुकी आवश्यकता है ?”

जगन्नाथ—“बस, कुछ नहीं चाहिए। परमात्माको धन्यवाद देता हूँ कि बीमारीकी नरक-यातनामें उसने मुझे ऐसे साधन दे

रखे हैं ! बस, मैं तो यही चाहता हूँ कि मेरी सेवा करनेवाले फूलें-फलें, और सबके सामने ही मैं माँसे जा मिलूँ । ये बातें मैं दुःखसे नहीं कह रहा, परमात्मासे प्रार्थना करता हूँ कि चौदह वर्षकी तपस्या बहुत होती है । रामको भी चौदह वर्षका वनवास हुआ था । तबीयतसे चाहता यह हूँ कि या तो अब अनन्त नींदमें सो जाऊँ, या फिर चल फिरकर बीमारों और दुखियोंकी सेवा कर सकूँ । मैं इस बातको खूब महसूस करता हूँ कि रोगी और दुखीसे मीठे और सहानुभूति-पगे शब्द बोलनेसे ही उसे काफ़ी सान्त्वना मिलती है । वह जानता है कि उसके दुखोंको समझनेवाले लोग हैं !”

मैं—“आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई, और आपकी कुटियाने तो मुझे मोह लिया है । बताइये, इसकी बनवाईमें क्या खर्च पड़ा ? मेरे यहाँ भी खेती होती है ।”

जगन्नाथ—“आप किसान हैं, या ज़मींदार ?”

मैं—“सोलहो आना काश्तकार ।”

जगन्नाथ—“तब फिर आपको ऐसी कुटिया बड़ी मँहगी पड़ सकती है ।”

मैं—“क्यों ?”

जगन्नाथ—“इसलिए कि कानूनन कोई भी काश्तकार खेतपर मकान नहीं बना सकता । खेती-बारीके लाभके लिए भोंपड़ा या मकान बनाया जा सकता है । आप देखते हैं, यह कुटिया भी भोंपड़ा है । छतके स्थान में छप्पर पड़ा है । हमारे बैल भी

यहीं बँधते हैं, और खेतीके औजार भी यहीं रखे जाते हैं। चारा भी यहीं कटता है; पर जमींदार साहबने बेदखली लगा दी कि हम लोगोंने रहनेके लिए मकान बनाया है। वर्षों मुकदमा चला। मैजिस्ट्रेटके यहाँसे हम हार गये। जमींदारने अदालत के जोरसे खेतपर अधिकार कर लिया, और मेरे लिए कह दिया कि हम नहीं जानते, इस रोगीको कहीं फेंक दो। मुझे उस समय मालूम हुआ कि मेरे साथ पत्नी दया कर सकते हैं, वायु अपने भूकोरोंसे बौरकी सूचना दे सकती है, पर जमींदार मुझ जैसे रोगीको एक भोंपड़ेमें नहीं रहने दे सकता ! बताइये, मैं कहाँ जाता ? घरपर कहीं ठौर न था ! यदि मैं वहाँ ले जाया भी जाता, तो अगले ही दिन मेरी लाश निकलती, इसलिए मैंने कह दिया कि मैं अपनी तबीयतसे कहीं न जाऊँगा, और न मेरे घरवाले ही हर्गिज मुझे कहीं उठावें। जमींदार और जमींदारके आदमी उठाकर मुझे कहीं रख दें। किसीका साहस मेरी चारपाई छूनेका न हुआ।

“अपील की गई। वर्षोंकी मुकदमेबाजी और हज़ारोंके खर्चके बाद हम जीते। अब आप इस कुटियाका मूल्य कूतिये।”

मैं—“आपके जमींदार बड़े ही मूढ़ और दुष्ट प्रतीत होते हैं।”

जगन्नाथ—“मूढ़ता और दुष्टताकी परिभाषा तो आप जानें; पर उनका कुल तो बड़ा शिक्षित है। कोई वकील है, तो कोई डाक्टर और कोई कालेजका प्रोफेसर।”

मैं—“ऐं ? आप क्या कहते हैं ? विश्वास नहीं होता ।”

जगन्नाथ—“न कीजिए विश्वास । जनाब, यहीं तक हद नहीं है । ज़मींदारने हमपर चोरी तकका मुक्तदमा लगाया—खेत काटनेकी चोरीका ! मुक्तदमेके दौरानमें ताने मारे कि एक भाई तो मुर्दा पड़ा है, दूसरेको सजा कराकर छोड़ेंगे और तीसरेको पैरवी कराते-कराते रगड़ देंगे । इस प्रकार सरकश काश्तकारोंका अन्त करके हुकूमत करेंगे ; पर अन्तरिक्षसे विधाता उनके मदपर हँस रहा था, क्योंकि हम जीते । खेत हमें मिल गया ।”

मैं—“तो फिर आप ज़मींदार और ज़मींदारीको कैसा समझते हैं ?”

जगन्नाथ—“ज़मींदारीका पेशा बहुत बुरा है, और देशका भला तब तक न होगा, जब तक ज़मींदारी मिटा या उठा न दी जायगी । ज़मींदार लोग निखटू हो गये हैं, और समझते हैं अपने-आपको ज़मीनका मालिक !”

मैं—“तो क्या आप ज़मींदारोंको ज़मीनका मालिक नहीं समझते ?”

जगन्नाथ—“भाई-साहब, मैं ज़मींदारोंको ज़मीनका मालिक हर्गिज़ नहीं मानता, और वह समय दूर नहीं, जब ज़मीनके ज़मींदार वे ही माने जायेंगे, जो खेत जोतते हैं, जो खून-पसीना एक करके खेतोंसे आत्मीयता पैदा कर लेते हैं । और ये बीच के एजेंट—ज़मींदार—बस, लगान वसूल करके ही अपना आधिपत्य जमाते हैं । यह सब धौधली है । कमाते हैं किसान,

और गुलछर्रे उड़ाते हैं—सो भी विदेशोंमें मोटरों और हवाई-जहाजोंमें—जमींदार ! सुनिये, यदि किसानोंको खेतका किराया-दार ही समझा जाय और जमींदारको खेतका मालिक, तो जमींदारको खेतकी उन्नति, सिंचाई और अन्य कामोंके लिए स्रर्च करना चाहिए। किसी मकानमें लोग किरायेपर रहते हैं, तो मकानकी मरम्मत और सफाई किरायेदारके जिम्मे नहीं होती, वरन् मालिक मकानके जिम्मे। अब आप बताइये कि जमींदार खेतके लिए क्या करते हैं ?

“यही नहीं, बेगार और अत्याचार तो साधारण-सी बात है। यदि किसान जमींदार या जमींदारके पक्षको वोट नहीं देता, तो वह सरकश करार दिया जाता है, बेदखलीतककी नौबत आती है और बेचारा सैकड़ों ढंगसे दिक्र किया जाता है, इसलिए यदि आप देशमें वास्तविक स्वराज्य चाहते हैं, तो इस जमींदार-प्रणालीका अन्त कीजिए। खेतोंकी उपज, पशुओंकी नस्ल और साग-भाजीकी पैदावारकी ओर जमींदारोंका तनक भी ध्यान नहीं है। उनकी कमाईका स्रोत है खेती, और उसकी उन्नति वे करते हैं विलासिता और अत्याचारसे ! यह परिस्थिति भयंकर है।

“एक बात और। जो धरतीका मालिक बनकर रहता है, वह नष्ट होता है, और उसे नष्ट होना भी चाहिए। धरती माता है। अपनी सेवा करनेसे वह प्रसन्न होगी। किसान उसे माता समझते हैं, और जमींदार उसे रखैल स्त्री। बताइये, किसका सम्बन्ध अधिक पवित्र है ?”

मैं—“हैं ? आप क्या कहते हैं ? विश्वास नहीं होता ।”

जगन्नाथ—“न कीजिए विश्वास । जनाब, यहीं तक हद नहीं है । ज़मींदारने हमपर चोरी तकका मुक्तदमा लगाया—खेत काटनेकी चोरीका ! मुक्तदमेके दौरानमें ताने मारे कि एक भाई तो मुर्दा पड़ा है, दूसरेको सजा कराकर छोड़ेंगे और तीसरेको पैरवी कराते-कराते रगड़ देंगे । इस प्रकार सरकश काश्तकारोंका अन्त करके हुक्मत करेंगे ; पर अन्तरिक्षसे विधाता उनके मदपर हँस रहा था, क्योंकि हम जीते । खेत हमें मिल गया ।”

मैं—“तो फिर आप ज़मींदार और ज़मींदारीको कैसा समझते हैं ?”

जगन्नाथ—“ज़मींदारीका पेशा बहुत बुरा है, और देशका भला तब तक न होगा, जब तक ज़मींदारी मिटा या उठा न दी जायगी । ज़मींदार लोग निखटू हो गये हैं, और समझते हैं अपने-आपको ज़मीनका मालिक !”

मैं—“तो क्या आप ज़मींदारोंको ज़मीनका मालिक नहीं समझते ?”

जगन्नाथ—“भाई-साहब, मैं ज़मींदारोंको ज़मीनका मालिक हर्गिज़ नहीं मानता, और वह समय दूर नहीं, जब ज़मीनके ज़मींदार वे ही माने जायेंगे, जो खेत जोतते हैं, जो खून-पसीना एक करके खेतोंसे आत्मीयता पैदा कर लेते हैं । और ये बीच के एजेंट—ज़मींदार—बस, लगान वसूल करके ही अपना आधिपत्य जमाते हैं । यह सब धौधली है । कमाते हैं किसान,

जैनेन्द्र की कहानियाँ

जैनेन्द्र-साहित्य [१४]

मैं—“आपके हृदयमें जमींदारोंके प्रति बड़ी कटुता है।”

जगन्नाथ—“मैंने सिद्धान्तकी बात कही है। एक हिस्सेदार जमींदारको छोड़कर शेष सब अपने जमींदारोंसे हमारी अब मित्रता है। वे हमारे यहाँ मित्रकी भाँति ठहरते हैं; पर सिद्धान्तकी बात तो साफ़ कहनी चाहिए। हाँ, जो जमींदार अपना समय खेती और किसानोंकी भलाईमें लगाते हैं, उनकी ओरसे किसीको शिकायत नहीं हो सकती; पर जनाब, जब विद्रोह और असन्तोषकी प्रचण्ड ज्वाला फूट निकलती है, तब सूखी लकड़ियोंके साथ गीली भी जल जाती हैं। फोड़ेमें जब चीरा लगता है, तब पीवके साथ अच्छा माँस भी कट जाता है, इसलिए जब जमींदारी-प्रथाके विरुद्ध आन्दोलन उठेगा, तब भले जमींदारोंपर भी चपेट होगी।”

मैं—“क्या ही अच्छा हो, आप निरोग होकर अपने विचारोंका प्रचार करें ?”

जगन्नाथ—“क्या आपके आशीर्वादमें स्वार्थकी भावना नहीं है ? परमात्माको मंजूर होगा, तो सब कुछ होगा; पर मेरा विचार तो लोगोंकी सेवा करना है। कदाचित् इस जन्ममें वह सेवा बदी नहीं, सो अगले जन्ममें देखा जायगा।”

मैं—“क्या आप गाँवमें रहकर सेवा करना चाहते हैं ?”

जगन्नाथ—“अरे भई, मैं क्या सेवा करूँगा ! इस समय तो मैं सेवा करा रहा हूँ; पर मेरा विचार है कि स्वातन्त्र्य-युद्धकी लड़ाईके लिए गाँवोंमें मोरचे ढालने चाहिए। पढ़-लिखकर जो

लोग कमाई या नौकरीके लालचसे शहरोंमें जा बसते हैं, गाँवके लिए वे मृतकके समान हैं। किसानोंके हितकी गाथा गानेवाले जो लोग शहरमें रहते हैं, वे सब बहुत अंशोंमें ढकोसलेंबाज हैं। गाँवमें रहकर मालूम होता है कि पुलिसका जुल्म किसे कहते हैं। पढ़-पढ़कर लोग गाँव छोड़ते चले जाते हैं, और देशकी शक्ति घटा रहे हैं। गाँवोंको ऐसा बनाना चाहिए कि वे रहने योग्य हो जायँ।”

मैं—“आप तो प्रत्येक विषयपर काफ़ी जानकारी रखते हैं।”

जगन्नाथ—“इसमें जानकारीकी क्या बात है ? साधारण-सी बातें हैं। इनपर तो मैं घंटों बातें कर सकता हूँ।”

काफ़ी देर हो गई थी। चलनेको तबीयत तो न करती थी; पर स्थानपर पहुँचना था, इसलिए रोगी पं० जगन्नाथजी से मैंने विदा ली।

चलते समय उनका दिल भर आया, और कहने लगे—
“भाई साहब, कोई आ जाता है, तो मन लग जाता है। इस कुटियापर बहुतसे भले व्यक्ति आते रहते हैं, और उनकी बातें मैं भी सुना करता हूँ। मेरी जिन्दगीके वे क्षण बड़े ही पुनीत थे, जब स्वर्गीय गणेशजी यहाँ आकर किसानोंकी भाँति बात करते थे।”

मैंने पूछा—“गणेशशंकर विद्यार्थी ?”

जगन्नाथने कहा—“हाँ।”

उस समय मुझे स्वर्गीय विद्यार्थीजीके असलो महत्त्वका पता लगा । जो दीन-से-दीन और दुःखी-से-दुःखी प्राणीको कुछ सान्त्वना दे सके, उसके दुःख-समूहमें से कुछ हिस्सा बँटा सके, कुछ कमी कर सके, वही दरअसल महापुरुष है ।

पड़ावपर लौटते समय रास्ते-भर मैं यह सोचता आया कि यदि कर्म-सिद्धान्त ठीक है, तो जगन्नाथजीका दूसरा जन्म न होगा । पहले जन्मके पापोंको वे भोग रहे हैं, और उनके क्षम होते ही वे ब्रह्ममें लीन हो जायँगे । जगन्नाथजी अब भी अपनी कुटियामें उसी आसनपर पड़े रहते हैं । उनकी बातें और उनके कष्ट पुनर्जन्म और ईश्वरकी हस्ती सिद्ध करते हैं ।

[इस लेखमें वर्णित जगन्नाथजी कोई कल्पित व्यक्ति नहीं, वरन् एक जीवित प्राणी हैं । उनके दुःखोंकी कथा सर्वथा सत्य है । हमने स्वयं उन्हें अपनी आँखों से देखा है । उनकी स्मरणशक्ति और प्रबन्ध-शक्तिको देखकर आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता । गत चौदह वर्ष उन्होंने जिस प्रकार बिताये हैं, उसे घोर तप कहनेमें कोई अत्युक्ति नहीं । दुःख और कष्टके निम्नतम धरातलपर पहुँचकर भी जगन्नाथके मनुष्यत्वमें अद्भुत सजीवता है ।

—बनारसीदास चतुर्वेदी, विशाल-भारत-सम्पादक]

ठाकुरकी आन



“ओरे नैनसुखा ! जाकर ठाकुर बलवन्तसिंहसे कह दे कि लगान आज शामतक अदा हो जाय, नहीं तो उनके हकमें अच्छा न होगा”—जमींदार लाला भगवानदीन ने अपने नौकर से कहा ।

नौकरने ठाकुर बलवन्तसिंहसे कड़ा तक्राजा किया और उनको सचेत कर दिया कि लालाजी कोई हीला-हवाला न सुनेंगे । किसी प्रकार आज रुपयोंका प्रबंध कर लेना । गहना-वहना गिरवी रखकर इस विपत्तिको टालना । आजके दिन अदायगी न होगी तो तुम्हारी आवरू मिट्टीमें मिल जायगी । जानते नहीं हो ठाकुर बदनसिंहको उस दिन क्या-क्या सुनना पड़ा । भगवानदीन लाला हैं तो जातके बनिए; पर स्वभावके ठाकुर ही हैं । बनियोंमें जमींदारी इन्हींकी चमकी है । ठाकुरोंके सींग इन्होंने ही उखाड़े हैं । ब्राह्मण तक इनकी जूतियोंपर बैठते हैं...

बलवन्तसिंह—“नैनसुख इन बातोंमें क्या रखा है ? मक्खी तो घात्रपर ही बैठती है । मैंने कभी कहने-सुननेका मौका ही

नहीं दिया। आज पंद्रह वर्षसे मैंने लालाजीकी एक बात भी नहीं सुनी। ठीक समयपर पाई-पाई तकका भुगतान कर दिया है। इस वर्ष एक दिनकी देर होगई तो क्या करूँ हवा ही नहीं चली। गेहूँ बेचकर मैं तो कभीका लगान चुका देता। खलियानमें सिली रखी है। बरसा ही न सका। आज हवा अनुकूल है। शामतक रास हो जायगी और कल शामतक मैं रुपए लालाजीको दे आऊँगा। पातालसे चाहे रुपए लानेपड़ें; पर कल जरूर रुपयों का प्रबन्ध कर लूँगा। लालाजीसे कह देना कि दिन छिपे रुपये उनके पास तक पहुँच जायेंगे।”

नैनसुखा—“ठाकुर कहनेको तो मैं कह दूँगा; पर मैं लालाजी का स्वभाव जानता हूँ। पूरे कुटकी हैं। अफसरोंसे दोस्ती है। लाखों रुपए पास हैं और सबसे बड़ी बात यह है कि आज-कल उनकी धाक है। उनकी जूतीमें जोर है। जिसपर बार करते हैं उसे तहस-नहस करके ही छोड़ते हैं। इस गाँवमें तुम्हारी आवरू-इज्जत है, और आजतक तुम्हारी हेटी नहीं हुई, इसलिए, मैं यही कहता हूँ कि लगानका प्रबन्ध कर लेना।”

बलवन्तसिंह (गंभीरतासे)—“भई, मेरे यहाँ टकसाल तो है नहीं। कल तक मैं रुपयोंका प्रबन्ध कर लूँगा। एक दिनकी मोहलत तो अदालतसे भी मिल जाती है। तू जाकर उनसे कह देना। मेरा खयाल वे जरूर करेंगे।”

नैनसुखासे बातें करके ठाकुर बलवन्तसिंह अपने काममें लग गए। इतना कड़ा तक्राजा उन्होंने कभी न सुना था। बारिश

आते देखकर जो पहलेहीसे भीगनेके डरसे लपपरमें बैठ जाता है उसे छींटोंका क्या डर। जो अदायगीके समयसे पहले ही लगान दे, उसे जमींदारकी सख्त सुस्त सुननेकी क्या आशंका। 'न ऊधौका लेन और न माधौका देन' की बातके बलवन्तसिंह सजीव मूर्ति थे। संसारमें कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जो भगड़ा मोल नहीं लिया करते, वरन् उससे वे तरह देते हैं। रास्तीकी सीधी सड़कपर चलते हैं; पर उस रास्तीकी सड़कपर, उनके नपे तुले आदर्शकी कोरको, कोई उद्दण्डतासे दशाता चला जाय और उनके खूनको उबालता ही रहे तो वे फिर आगा-पीछा नहीं सोचते और मरमिटनेपर उतारू हो जाते हैं। घायल शेरकी भाँति हमला करते हैं।

ठाकुर बलवन्तसिंह भी ऐसे ही भले, सीधे, और स्वाभिमानी आदमी थे। किसीसे कुछ लेना उन्होंने सीखा ही न था। देहातके लोग उन्हींसे उपकृत होते थे। किसीको बिच्छूने काटा तो भगे गए ठाकुर बलवन्तसिंहके पास। किसानोंके भगड़ेकी कोई बात हुई तो फ़ैसला गया बलवन्तसिंहके पास। देहातकी सभी भली बातोंमें उनका हाथ था।

उस दिन जमींदारका कड़ा तक्राजा सुनकर वे बड़े दुखी हुए। उनके बाप-दादाओंने भी जमींदारी की थी। जमींदारी ही क्यों उनकी रगोंमें उन महापुरुषोंका खून था जो भारतवर्षके कभी सम्राट थे। उनके बाप-दादाओंने क्या कभी किसी भले आदमीसे—उस आदमीसे जो हमेशा समयसे पूर्व लगान देता

आया हो—कभी ऐसा तक्राजा किया होगा—इन विचारोंमें डूबे वे अपना काम करते रहे। उस दिन उन्होंने स्नान भी नहीं किया। घरसे खबर आई कि रोटी तैयार है; पर बलवन्तसिंह खलियान से हिले नहीं। रासको बरसानेमें लगे ही रहे। वे उस बटोही की भाँति लगे रहे जो दिन छिपता जान अपने पड़ावकी ओर ताबड़-तोड़ चला जाता है। बटोही जानता है कि दिनमें वह पड़ावपर नहीं पहुँच सकता; पर फिर भी वह इस कोशिशमें रहता है कि कुछ पहले ही पहुँच जाय। रास करके और नाज किसीको तुला कर वे रूप एकत्र करनेको चिन्तामें थे। उनकी वृद्धा माता भी आई और कहा—“बेटा एक कौर रोटी खाले। और नहीं तो मठा ही पीले। आध घण्टेकी देरीमें कुछ बनता बिगड़ता नहीं। न सही आज रुपया। न देनेसे कोई कुर्की थोड़े ही हो जायगी। भगवानदीन कलका लड़का है। आज जमींदार है तो क्या। लगान न हुआ प्राण देना होगया। चल उठ। कुछ खाले।”

“ना अम्मा। रोटी न खाऊँगा। किसी प्रकार आज रास हो जाय तो रुपयाका बन्दोबस्त हो सकेगा। जमींदारोंके दिमाग बिगड़ गये हैं। कहीं कुछ कह बैठा तो बात तीन कौड़ी की होजायगी। ब्राह्मणको तो पैर छू कर राजी कर लो। बिरादरीके आदमीको किसी और तरह मना लो। कुछ सुन भी लो तो कोई बात नहीं; पर अपनेसे छोटे बिरादरी वालेकी बात कैसे कोई सुने और भगवानदीनके पैर आज कल जमीन

पर नहीं पड़ते । सो अम्मा तू जा । मुझे काम करने दे ।”—
बलवन्तसिंहने अविरल भावसे कहा । वृद्धाकी एक न चली
और बलवन्तसिंह काम पर जुटे रहे ।

+ + + +

सूर्यकी प्रचण्ड किरणें बलवन्तसिंहके शरीरपर तप कर
क्षीण होने लगीं । पक्षियों और पशुओंको उन्होंने बेहाल कर
दिया । भाग कर उन्होंने वृक्षोंकी शरण ली ; पर बलवन्त
सिंहको वे तनक भी विचलित न कर सकीं । शरीरका रस
पसीनेके रूप में निकलना था । राम-राम उसका हाहा-कार
मचा रहा था ; पर उस शरीर रूपी किलेकी स्वामिनी—उसकी
आत्मा—अटल थी । जब जनरल ही डटा रहे तब सैनिक लोग
कैसे भागें ।

सूर्य छिपा और बलवन्तसिंहकी रास भी तैयार हुई ।
तराजू और बाँट लाये गए । गोधन, दूब और आकके फूलों
से रासको पूजा गया । रास तुल रही थी और चतुर्थीका चाँद
आकाशमें बिना मल्लाहकी नावके समान डगमगा रहा था ।
रासका तोलना प्रारम्भ ही होने वाला था और बलवन्तसिंहके
क्लान्त, बदन पर सफलता और आनन्दके चिन्ह अंकित हो रहे
थे । पल्लो डालकर वे बैठे ही थे और तोलने वालेने ‘रामा है
राम’ कहना प्रारम्भ ही किया था कि लाला भगवानदीनके
चार नौकर लाठी बाँधे खलियानमें आगये । उनमेंसे एक
बोला—“सरकारने हुक्म दिया है कि ठाकुरको बुला लाओ ।”

बल०—“जाकर कह दो कि रास होगई है। लालाजी चाहें तो इस अन्नको उनके यहाँ पहुँचा दूँ और कल रुपया देकर उठालूँगा।”

नौकर—“हमें तो यह हुक्म मिला है कि जाकर फौरन बुला लाओ और न आवे तो पकड़ लाओ।”

बल० (आँखें लाल करते हुए)—“पकड़नेको क्या मैंने चोरी की है या लाला भगवानदीन दरोगा हैं जो शकमें ही किसीको पकड़वाते हैं। उन्हें उगाही लेनी है या मेरी जान।”

नौकर—“सो सरकार जानें। आखिर मालिक हैं। जान भी ले सकते हैं। हो तो तुम रियाया ही।”

बल०—“मालिक होंगे उसके जिससे उनकी सात भाँवरें पड़ी हों। उनके खेत हैं सो लगान देता हूँ। देर होगई हो तो जाँय अदालतमें। बीस बार कह दिया कल रुपया देदूँगा। न मानें तो उनके घर भैंस बाँध आऊँ। नाज डाल आऊँ। जाकर कह दो। (तोलने वाले से) हाँ तोलो।”

नौकर—“अरे ठाकुर कैसी बातें करते हो। मालूम नहीं है लालाजीके पेशाबमें दिया जलता है। ज़रा सँभल कर बातें करो। किस होश में हो ?”

बल० (बिगड़कर)—“अभी कुछ और देखोगे। जाकर कहदो जो कुछ मैंने कहा है।”

तोलने वालेने भगड़ा बढ़ता देख उभय पक्षमें शांति स्थापितकी और समझा बुझाकर बलवन्तसिंहको ज़मींदारके पास भेजनेको राज़ी किया। कभी-कभी संसार में अहित अपने प्रिय जनोंसे

भी होता है। हितके लिये हितैषी जन कभी-कभी ऐसी राय देते हैं—राय ही नहीं कार्य करनेको मजबूर कर देते हैं—कि हमको घोर विपत्तिका सामना करना पड़ता है। माता-पिता कभी-कभी अपने बच्चोंको ऐसे विभागमें भेजते हैं जिनके लिये वे सर्वदा अयोग्य होते हैं और अपना जीवन नष्ट कर डालते हैं। सभीने मिल कर बलवन्तसिंहको ठेल कर लाला भगवानदीनके यहाँ भेज दिया। खयाल था कि न जानेसे, न मालूम, कौन-सी विपत्ति आ जाय। जानेसे हुक्म उदूली तो न होगी। रही अदायगीकी बात, सो एक दिनकी तो बातका मानना कोई बड़ी बात न थी, पर लोगोंको क्या मालूम था कि विधाताको कुछ और ही मंजूर था।

बलवन्तसिंह गये; पर उस आदमी की भौंति जो अपनी मान-मर्यादा को तिलांजलि देकर, दबाये और धमकाये जानेपर माफ़ी माँगनेको तैयार हो जाता है। उस समय उसकी मानवी कमजोरियाँ कहती हैं—“किसी प्रकार पिंड छुटा। जीता रहेगा तो इसका प्रतीकार कर सकेगा।” और उस क्षीण हृदय-सागर की हिलोर से ऊपर अन्तरात्मा पुकारती है—“मूर्ख ! संसार में मान और मर्यादा ही सब कुछ है। मरनेके बाद कोई नहीं पूछेगा कि तू कौन है। केवल बात और नाम रह जायेंगे।” इस द्वन्द्व में पड़ा व्यक्ति जाग्रत और सुषुप्तावस्थामें होता है। जागते हुए सोता-सा रहता है। बलवन्तसिंह चले जा रहे थे। उनकी टांगें मशीन की भौंति उधर जा रही थीं। पैरों के स्थानमें

उनका मन होता तो वे कभी न जाते । मजबूरन जाना पड़ा ।
गये ।

×

×

×

×

गाँवकी ऊँची चौपालपर एक पलँग पड़ा था और उसपर लाला भगवानदीन बैठे फरशी गुड़-गुड़ा रहे थे । चारों ओर नौकर खड़े थे । एक ओर छिड़काव हो रहा था और लालाजी हुक्का पीकर शौच का आह्वान कर रहे थे । इसी समय एक अभियुक्तकी भाँति नौकरोंके आगे बलवन्तसिंह आकर खड़े हुए । बलवन्तसिंहको देखकर लालाजीका पारा ऊँचा चढ़ गया और फटकार कर बोले—“क्यों ठाकुर ! मिजाज हो गया है । एक तो लगान नहीं दिया और तिस पर अकड़ और अकड़ पर बदतमीजी ! बीस बार नौकर भेजे और तुम्हारे मिजाजका ठिकाना ही नहीं । लाये रुपया ?”

बलवन्तसिंह (गम्भीरतासे)—“लालाजी मैं पहले ही कह चुका हूँ कि सौ ठौरसे करूँ, कल आपको रुपया जरूर दे दूँगा । आज सुबहसे लगा हूँ । अन्नका एक दाना भी मुँहमें नहीं गया । नाज तैयार है । शहरमें कल नाज बेच कर रुपया ले आऊँगा ।”

भगवानदीन—“मेरी बलासे, जो मुँहमें अन्न नहीं गया ! तुम्हारे न खानेसे मैं अपनी ज़मींदारी थोड़े ही बर्बाद कर दूँगा ।”

बल०—“तो आज तो कोई उपाय नहीं है ।”

भगवानदीन—“मैं नहीं जानता। मेरे जाने तुम अपनी लुगाईका लहँगा बेच कर रुपया लाओ। बस आधे घण्टेकी मुहलत है।”

बल० (आवेशको रोक कर)—“अच्छी बात है। लुगाईका लहँगा बेच कर ही लगान आज चुकाऊँगा। आधे घण्टेकी मुहलत है न।”

जमीदार (शौचका लोटा उठाने हुए और त्योंरियाँ चढ़ाते हुए)—“हाँ, एक मिनट ज्यादा न हो। वह देखो सामने घड़ी है।”

बलवन्तसिंहके जानेपर लाला भगवानदीनके खुशामदियोंने कहा—“सरकार लोगोंकी नब्ब खूब पहचानते हैं। हमने तो समझा था कि बलवन्तसिंह वे तिल हैं जिनमें तेल नहीं है।”

भगवानदीन (अभिमानके साथ)—“दाईसे कहीं पेट छिपता है। यह बलवन्त बड़ा बना हुआ है। अपनेको बड़ा आदमी समझता है। है तो पचास बीघेका जोता; पर अकड़ रखता है रईसकी सी। आज बच्चू फँसा है आँकड़ेमें, पर उसके पास रुपया होगा। पोढ़ा किसान है।”

x

x

x

x

घर आकर बलवन्तसिंहने अपनी स्त्री और माताको सब बात सुनाई और कहा—“अब मेरा अन्तिम समय आ गया है। बस त्रिदा मांगता हूँ, उस जीवन पर हज़ार लानत है जो अपनी स्त्री, बहन और लड़कीके विषयमें ऐसी बातें सुने। हिन्दू आदर्शका हास उसी समय हो गया था जब भीष्म, कर्ण, अर्जुन

और भीमके सम्मुख द्रौपदीका चीर खींचा गया। पाण्डव बहुत बड़े थे। उनकी बुद्धि भी बड़ी होगी। मैं तो साधारण-सा आदमी हूँ। और जब तक दम में दम है मैं उस आदमीकी जीभ या गला काटे बिना न मानूँगा जो मेरी स्त्रीका लहंगा उतरवाना चाहता है। उस नर पिशाचको मैं पाठ पढ़ाना चाहता हूँ कि यद्यपि मैं गरीब हूँ तो भी इज्जत रखता हूँ और मेरी स्त्री की वही इज्जत है जो उस धूर्त भगवानदीनकी स्त्रीकी है। आज मेरी आँखोंसे खून बरस रहा है। आज वह दुष्ट भगवानदीन है या फिर मैं ही हूँ। बस जाता हूँ”—ऐसा कह कर उसने तलवार उठा कर नंगीकी और उसे चूमा और कहा—“तू ने हमारी रक्षाकी है। आज तेरा ही सहारा है।” एक दोहर ओढ़ कर और तलवार छिपा कर यमराज की मूर्ति बलवन्तसिंह भगवानदीनकी चौपालकी ओरको बढ़ा। जो जितेन्द्रिय है उसे कोई वासना अपनी ओर नहीं खींच सकती। जिसने मरने या मारनेका प्रण कर लिया है उसके लिए जैसा ही एक वैसे ही हजार और करोड़। जो अपनी जान देने पर उतारू है वह हजार ढँगोंसे अपने शत्रु तक पहुँच सकता है। मरना तो है ही। साथमें शत्रुको भी ले चलें—ऐसी भावनासे प्रेरित व्यक्तिको किसका डर। बलवन्तसिंह भी उस समय ऐसा ही व्यक्ति था।

चौपालपर चौकीपर बैठे लाला भगवानदीन कुल्ला कर रहे थे। बलवन्तसिंहको दोहर ओढ़ देखकर लालाजीको कुछ भय-सा हुआ, पर सँभल कर बोले—“रुपए लाए ?”

बलवन्तसिंह—“हॉ, लहंगा बेचकर रुपया लाया हूँ, पर लहंगे का मूल्य असाधारण है। देख तेरी सात साखको मालूम हो जायगा कि तेरी बद-कलामीका क्या फल है। नीच !”

x x x x

लाला भगवानदीनका सिर धूलमें लोटने लगा। एक नौकरने बलवन्तसिंहको पकड़ना चाहा और फलस्वरूप एक बार उपपर भी हुआ। एक बाँह उसकी भी कट गई।

x x x x

बलवन्तसिंह फरार हो गये। उनकी गिरफ्तारीके लिए पुलिसने पाँचसौ रुपएका इनाम रक्खा। वर्षों बीत गये; पर बलवन्तसिंहका कुछ पता न चला। भगवानदीनके घरवालोंने अपनी ओरसे हजारों रुपए खर्च किये कि कहीं बलवन्तसिंहका पता चल जाय, पर न मालूम वह पृथ्वीके किस कोनेमें जा छिपा था। एक के बाद एक करके अनेक वर्ष बीत गए। भगवानदीनके उत्तराधिकारीने अय्याशीमें अपनी सब पैतृक सम्पत्ति फूँक दी। बलवन्तसिंह वाली घटना एक कहानी-सी हो गई—एक बहुत साधारण-सी कहानी।

x x x x

भगवानदीनके कल्लके ठीक तीस वर्ष बाद दो जवान आदमियोंने एक सत्तर वर्षके बूढ़ेको पेश किया और पाँच सौ रुपये माँगे। पुलिसने जाँच की और वह बूढ़ा बलवन्तसिंह था।

भगवानदीनको बध करकेवह ग्वालियर राज्यके कोनेमें जा बसा था और वहीं उसने दूसरा विवाह किया था । उससे उसके दो लड़के हुए । तीस वर्ष बाद उसने अपने लड़कोंसे कहा—“अब मेरे मरनेका समय निकट है । मेरी गिरफ्तारीके लिए पाँचसौ रुपएका इनाम है । मेरा विश्वास है कि मुक्तदमेके दौरानमें ही मैं चल बसूँगा । जो लोग अपनी स्त्री-बच्चोंकी मान-मर्यादाकी रक्षा करनेवालोंकी गिरफ्तारी पर पाँचसौ रुपए इनाम रखते हैं तो उनको भी कुछ दण्ड क्यों न दिया जाय । उस पाँचसौकी रकममेंसे ढाईसौ रुपए अपने काममें लाना और ढाईसौ की लागतके पच्चीस लहंगे गाँवकी वधू-बेटियों को बाँट देना ।”

लड़कोने पहले तो इनकार कर दिया पर बलवन्तसिंहकी ज़िद और अन्तिम इच्छा प्रकट करने तथा समझाने-बुझाने पर वे राजी होगए ।

× × × ×

पाँचसौ रुपए बलवन्तसिंह के लड़कों को मिले और मुक्तदमे की दूसरी पेशी तक बलवन्तसिंहका देहावसान हो गया ।

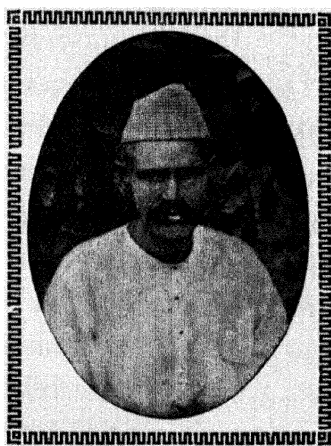
भगवानदीनकी ज़मींदारी मिट गई और मिट गया साथमें उनका वंश, पर बलवन्तसिंहकी औलाद अबभी है और उनके कुटुम्बके लोग उनका नाम बड़े आदरसे अबभी लेते हैं ।



हरनामदास



बोलती प्रतिमा—



हरनामदास

ऋषीकेश और लक्ष्मणभूलाके बीच, टिहरी राज्यका एक स्थान है मुनिकी रेती । गंगाजीपर बसे होनेपर भी वह अब ऊजड़-सा हो गया है । स्टेट गैरेज और कारखानेके पास खड़े होनेसे तो वह काटने दौड़ता है; पर सन् १९२२-२३ में वहाँ खासी रौनक थी । वह मधुमक्खीका छत्ता-सा बना हुआ था । डांडियोंके बनने और चिड़ियाघरके जीवोंको देखनेके लिये वहाँ यात्रियोंके ठट्ठ-के-ठट्ठ लग जाते थे । बरसातमें बबूलके पेड़पर लगे बयाके घोंसलोंमें जैसी चहल-पहल होती है, वैसा ही कुछ समा मुनिकी रेतीमें था । एक उपनिवेश-सा बस रहा था । मीठी चीज़ पाकर जैसे चींटियाँ चारों ओरसे आ जाती हैं, वैसेही न-मालूम कहाँसे, वहाँ दूकानदार आ गये थे । किसीकी गुड़-चनेकी दुकान थी, तो कोई हलवाई बना बैठा था । तेलकी पूरियाँ और तम्बाकूकी भी काफी बिक्री थी । परचूनी वालोंको तो अवकाश ही न मिलता था । कुली और मजदूर दाल-आटा लेकर गंगा-किनारे रोटी बनाने लगते थे । दोपहर और शामको

मुनिकी रेतीमें यह मालूम होता था, मानो सेना पड़ाव डाले पड़ी है ।

मुनिकी रेतीमें अनेक दूकानदार थे, पर उन सबकी जान था एक पंजाबी पकौड़ीवाला । उसके पास दुकानमें माल अधिक न था । एक कढ़ाई, दो लोटे, एक थाली, एक करछी और सेर दो सेर बेसन—बस, यही सामान उसकी दुकानपर था । दिनमें दो बार कढ़ाई चढ़ाता, और बात-की-बातमें अपनी पक्व-ड़ियाँ बेच लेता । स्वभावका वह इतना अच्छा था कि चलते आदमीसे उसकी दोस्ती हो जाती थी । एक बार जिसने पकौ-ड़ियाँ खाईं, वह रोजाना ही उसकी दुकानपर आता । ठलुआ लोग तक उसकी दुकानपर गप मारने आ जाते, और उसी बहाने पैसे-दो-पैसेकी पकौड़ी खरीदते । बात यह थी कि पकौड़ीवाला दिलका धनी था । दीन-दुखियोंको बची-खुची पकौड़ी बाँटना, आस-पासके रोगियोंकी ख़बर-सुध लेना, सेवा-शुश्रूषा करना, भूखे-प्यासेको खाना देना और लतीफ़े सुनाना उसके स्वभावमें शामिल था । अक्खड़ वह इतना था कि ठीक बातपर राज्यके दीवान और उसके रिश्तेदारों तककी परवा न करता था । भलोंके लिए वह कपिला गाय था, और दुष्टोंके लिये नंगी तलवार । बेलौस आदमी था, इसलिए, किसीकी परवा न करता था । उसकी लोकप्रियता और अक्खड़पनकी बातें राज्यके दीवान तक पहुँचीं, और पहुँचीं शिकायतके रूपमें; पर उसने उन शिकायतोंकी उपेक्षा ही की । अलमस्त पकौड़ीवाला अपनी

दुकान करता रहा, और गंगाजीकी धारके समान उसकी बातें और लतीकेवाजो चलती रहीं ।

×

×

×

×

जनवरी सन् १६२४ के एक प्रातःकालको पकौड़ीवालेने अपनी भट्टी गरम की । हरिद्वार, ऋषीकेश और मुनिकी रेतीका जाड़ा और तिसपर 'ढाड़' ❀ का वेग ! जाड़ा मज्जा तकको ठिठरा रहा था । पकौड़ीवाला आग तेज करके तेलका बर्तन उठाने ज्योंही मुड़ा त्यों ही दुकानके सामने खड़े एक संन्यासीपर उसकी नज़र पड़ी । वह संन्यासी दुकानके सामने होकर प्रति-दिन टहलने जाया करते थे, और जिज्ञासु तथा कौतूहलपूर्ण दृष्टिसे उधर देखा करते थे । पकौड़ीवाला भी उनकी ओर देखकर अपने काममें लग जाता था । संन्यासीकी आकृति पकौड़ी-वालेको देखकर ऐसी हो जाती थी, मानो उनकी स्मृति किसी भूले नामको स्मरण कर रही हो । किसी-किसी दिन वह संन्यासी पकौड़ीवालेकी दुकानके सामने ठिठकभी जाते थे ; पर रुककर उससे बातचीत करनेका साहस न होता था । पकौड़ीवालेकी आकृति उस आदमीसे मिलती थी, जिसके वे अतिथि रहे थे । और उनके आतिथ्यमें जिसने सात-आठ हजार रुपया खर्च कर दिया था ; पर उतना बड़ा आदमी अलादीनके लैम्पके जादूसे ही उस तुच्छ पकौड़ीवालेकी हैसियतमें आ सकता था—ऐसी शंकाके कारण संन्यासी उस पकौड़ीवालेसे कुछ न पूछते थे । उसकी

❀ हरिद्वार और ऋषीकेशके आसपास प्रातःकाल चलनेवाली हवा ।

सूरत तो उनके वैभवशाली मेजबानकी-सी थी। वही छरहरा-बदन, वही चेचकरू चेहरा और वही परिचित स्वर ! पर वह आन और शान न थी। छै-सात मोटर रखनेवाले और लाखोंके व्यापारीसे पकौड़ीवालेकी सूरत क्यों मिलती है ? क्या वह उनके धनी-मानी मेजबानका कोई भाई है ? क्या भाग्यचक्रके चपेटोंसे उसका कोई भाई गंगाकी शरणमें, पहाड़के सहारे, अपने अन्तिम दिन काट रहा है ? इन सब प्रश्नोंका कोई उत्तर न मिल रहा था, इसलिये, संन्यासीने कई दिनोंके सोच-विचारके बाद उस दिन पकौड़ीवालेसे ही बात करनेकी ठान ली, और दुकानके सामने संन्यासीको खड़ा देरकर पकौड़ीवाला मुसकरा कर बोला—“कहिये स्वामीजी महाराज ! क्या जाड़ा लग रहा है ? तापना चाहो, तो भट्टीके पास आकर बैठ जाओ।”

संन्यासी—“जाड़ेकी कोई चिन्ता नहीं। वह तो रोज़की बात है। मैं आपसे एक बात पूछने खड़ा हूँ। तबीयत नहीं मानती। आपका नाम क्या है, बस, मुझे यह बतला दो।”

पकौड़ीवाला (गम्भीरतासे)—“मे-रा नाम हरनामदास है।”

नाम सुनते ही संन्यासी महाराजकी आँखोंके सामने अँधेरा छा गया, और दोनों हाथोंसे अपना सिर पकड़कर बैठ गये, और विस्मयसे पूछा—“बगदादवाले हरनामदास ?”

हरनामदास—“हाँ, महाराज, बगदादवाला हरनामदास मैं ही हूँ।”

संन्यासी—“यह क्या बात हो गई ! यहाँपर इस दशामें कैसे ? यह तो अलिफ लैलाकी कहानी-सी घटना है ?”

हरनामदास—“मैं रहता भी अलिफ लैलाकी कहानियोंके देश में था । घटना तो ठीक वैसी ही है ; पर मुझे अफसोस ज़रा भी नहीं । आनन्द भी मैंने लूटा था । कमाया भी मैंने बहुत । सुख और आनन्दका दूसरा पहलू है दुख और कष्ट । जीवनका एक यह भी अनुभव है । खटाई और नमकके खाये बिना मिठाईका मज़ा नहीं आ सकता । सो स्वामीजी ! उस मिठास का स्वाद इस कड़ुएपनसे आ रहा है ।”

संन्यासी (आश्चर्यसे)—“वह तुम्हारा रुपया और सम्पत्ति क्या हुई ?”

हरनामदास—“स्वामीजी महाराज ! सम्पत्तिकी क्या बातें करते हो ! वह तो आती है, और चली जाती है । लक्ष्मी एक की होकर किसीकी भी नहीं रही ।”

संन्यासी—“भाई, मुझसे तो तुम्हारी यह दशा देखी नहीं जाती । कहाँ तुम्हारे दर्जनों टहलुए, और कहाँ आज तुम... इस दशामें !”

हरनामदास (तनक हँसते हुए)—“स्वामीजी महाराज ! आप तो ज्ञानवान हैं । आप तो रुपयेकी ओर देखते हैं । मेरी ओर नहीं । रुपया और सम्पत्तिजन्य वैभवसे मैं तो नहीं बदला । उस दशामें मैंने आपकी सेवा सोनेके कुछ टुकड़ोंसे की थी, जो मेरी सम्पत्तिका नगण्य भाग थे—बस, हाथके मैल

के समान, और अब मैं आपकी सेवा अपनी पूरी सम्पत्तिसे करने को तैयार हूँ, और नौकरोंके स्थान में स्वयं मैं मौजूद हूँ।

ये बातें सुनकर संन्यासीने एक ठण्डी साँस ली, और दुकान में आकर भट्टीके सामने बैठ गये। आध घण्टे तक वहाँ तापते रहे और हरनामदाससे बातें करते रहे। चाय पीकर वहाँसे वे शोक और चिन्ता-मुद्रामें डूबे चले गये।

× × × ×

सन् १९२७ के आरम्भमें देहरादूनमें 'हिन्दू-संसार' के मान-हानिवाले मुक्तदमेकी सुनवाई हो रही थी। अभियुक्त-पक्षकी ओरसे गवाह बुलानेमें बड़ी कठिनाई हो रही थी। मुद्देके भय से टिहरी राज्यसे जो गवाह आ रहे थे, वे अपनी दथेलीपर जान रखकर आ रहे थे। जनवरी या फरवरी की किसी रातको वकीलके घरपर मुक्तदमा-सम्बन्धी परामर्श रातभर होता रहा, और दो-एक विषयपर इतना वाद-विवाद हुआ कि प्रातःकालके छै बज गये। कई मित्र तो लेट रहे। थोड़ी देरके लिए मैं भी आरामकुरसीपर पड़ रहा, और साढ़े छै बजे कमरेके दालानमें बाहर निकला। दालानसे लगी नीचे जानेको सीढ़ियाँ थीं। मेरा कमरेके बाहर निकलना हुआ, और सीढ़ियोंपर दो आद-मियोंका चढ़ना। उन्हें नीचेसे ऊपर चढ़ते देख मैं खड़ा हो गया, और वे सीढ़ियोंसे ऊपर दालानमें आ गये। उनमें एक संन्यासी था, और दूसरा साफा बाँधे, छरहरे शरीरका—आकृति और वेषसे—पंजाबी। पूछनेकी भावनासे मैंने उनकी ओर देखा,

और साफ़ेवाला आदमी बोला—“बाबू चंडीप्रसाद वकीलकी यही कोठी है ?”

मैं—“हाँ, यही है। कहो क्या है ? कहाँसे आये हो ?”

साफ़ेवाला—“‘हिन्दू-संसार’ की तरफ़से गवाही देने ये (संकेत करते हुए) स्वामीजी आए हैं।”

मैं—(स्वामीजीकी ओर देखते हुए)—“स्वामीजी महाराज ! आपका शुभ नाम ?”

साफ़ेवाला—“आपका नाम स्वामी कृष्णाचार्य है।”

मैं—“इस नामका कोई गवाह ‘हिन्दू-संसार’ की ओर से तलब नहीं किया गया।”

संन्यासी—“मैं बिना तलब किये हुए ही आया हूँ। हिन्दू-धर्म-सम्बन्धी मामला है। मैंने जब समाचारपत्रोंमें पढ़ा कि अमुक अभियोग लगाया गया है, तब मैंने धर्मकी खातिर यह उचित समझा कि मैं स्वयं चलकर गवाही दूँ।”

मैं—“आपके पास इस बातका क्या प्रमाण है कि आप घटना-स्थलके गवाह हैं ?”

संन्यासी—“मैं डायरी रखा करता हूँ। आप डायरी देख लें।”

मैं (डायरी पढ़कर और साफ़ेवालेकी ओर सम्बोधित होकर)—“आप कौन हैं ?”

साफ़ेवाला—“आपको मुझसे क्या सरोकार ! स्वामीजीका एक सेवक हूँ।”

साफ़ेवालेकी यह रुखाई मुझे पसन्द नहीं आई, और मैं उसके उत्तरको अशिष्टतापूर्ण समझ कुछ कहने ही को था कि इतनेमें संन्यासी बोल पड़े—“इनका नाम हरनामदास है। पहले ये बहुत बड़े व्यापारी थे। इनका लाखोंका कारोबार बग़दाद और बसरेमें था। अब मुनिकी रेतीमें रहते हैं।”

हरनामदासकी बातचीतसे मुझपर अच्छा प्रभाव न पड़ा, और यह सन्देह होने लगा कि कहीं गुरु-चेलेकी मिली भगत न हो। मुझे स्वामीजी और हरनामदासकी बातोंमें ‘मनतुरा हाजी बिगोयम तू मिरा क़ाज़ी बिगो’ ❀ की गन्ध आई।

कुछ दिनों बाद मुझे ऋषीकेश जानेका अवसर पड़ा, और मिस्त्री केसरसिंहकी दुकानपर जाकर बैठा ही था कि भीतरसे हरनामदास निकला। मुझे देखकर वह बारा-बारा हो गया, और ऐसे मिला, मानो वर्षोंसे मुलाक़ात हो। झटसे पानी लाया, और हाथ धोनेको कहा। मैंने बहुत कुछ कहा कि मुझे हाथ धोनेकी ज़रूरत नहीं, पर वह न माना। शीघ्र ही अँगूठेसे सोडाकी बोतल खोल दी और मेरे हाथमें दे दी। सोडा और लैमोनेड मुझे अच्छा नहीं लगता, पर उस आवभगतके मारे मुझे मन मारके पीना पड़ा। सोडाके बाद फल और मिठाई खानी पड़ी। यह आतिथ्य उस शुष्क मिलनके कारण था, जब हरनामदास स्वामी कृष्णाचार्यको लेकर देहरादून गया था, और आठ-दस मिनटकी अति साधारण और वकीलोंकी-सी

❀ मैं तुम्हें हाजी कहूँ और तू मुझे क़ाज़ी कह।

बातोंके उपरान्त मैंने उससे यह भी न पूछा था कि चाय पियोगे । भोजनकी तो बात ही क्या हो सकती थी । हरनामदासके स्वभावपर मुझे आश्चर्य था । खाने खिलातेमें उसकी आँखोंसे संतोष, प्रसन्नता और आत्म-गौरवकी ज्योति चू रही थी । उसकी आँखें रसीली-सी थीं । जो बात करता था, वह ऊँचे स्वरमें । भीतर और बाहर वह एक-सा ही प्रतीत होता था ।

हरनामदासके व्यक्तित्वका अनुमान तो मुझे ऋषीकेशमें हो गया था । उसकी मुखाकृतिसे उसके चरित्रका पता मैं कुछ लगा सका; पर नजाने क्यों इस बातपर विश्वास न होता था कि अरबमें उसने लाखों रुपये कमाये होंगे । मुझे उस कथनमें अतिशयोक्तिकी मात्रा अधिक मालूम होती थी ।

× × × ×

सन् १६२८ के जाड़ोंके दिन थे । खेतवाली कुटियासे मैं घर—गाँवमें—कोई चीज़ लेने गया था । अभी मैं घर पहुँचाही था कि पीछेसे एक नौकर भागता आया कि ...साहब आये हैं । ...साहब एक अति उच्च पदाधिकारी थे । उनसे मिलनेमें, उन तक पहुँचनेमें, न मालूम कौन-कौनसे नियमोंका पालन करना पड़ता था । वे महानुभाव कैसे आ गये ! उन्हीं पैरों मैं लौटा, और कुटियापर आकर देखा, तो हरनामदास और ...साहब हैं । ...साहबको पीड़ासे इतना कष्ट था कि उनसे दस कदम पैदल न चला जाता था । डेढ़ मील स्टेशनसे हरनामदास उनको अपनी पीठपर रखकर लाया था । उस दिनसे मुझे

हरनामदासका वास्तविक रूप दिखाई पड़ा। तबसे कई महीने तक हरनामदासका गाँवमें रहना हुआ। बीसियों बार उसके साथ मैंने यात्रा की; देहरादूनसे दिल्ली, दिल्लीसे कलकत्ता, शिमला, जयपुर और लखनऊ तक न मालूम कितनी बार वह साथ रहा।

हरनामदास ...साहबकी क्रीतदासकी भाँति सेवा करता था। नौकरीके लिए नहीं। नौकरी तो वह परमात्मा तककी नहीं कर सकता, और न वह यह भविष्यकी किसी आशासे करता था। ऐसा करना होता, तो वह अपनी मुनिकी रेतीकी ढाई-तीन सौ रुपया मासिककी आमदनीकी दुकानको केवल सेवाकी खातिर चौपट न कर आता। उसके आने और सेवा करनेके केवल दो कारण थे—पहला तो यह कि ...साहबने मनुष्यताके नाते हरनामदासकी कठिन बीमारीमें अपने नौकरोंसे कुछ शुश्रूषा करादी थी। बस, उनके उस गुणपर हरनामदास लट्टू था। दूसरा कारण था ...साहबका स्वार्थी और नीच लोगोंके कारण कष्ट और विपत्तिके आवर्तमें पड़ जाना। हरनामदासकी कोमल आत्मा किसीका कष्ट नहीं देख सकती। दूसरोंके कष्ट निवारणके लिए उसकी मनुष्यता दुःखित होकर आगे बढ़ती है और अपने आपको होम देती है। इन्हीं दोनों कारणोंसे प्रेरित होकर हरनामदास ...साहबकी सेवा करने पर तत्पर हुआ था।

किसी व्यक्तिके गुण-दोष साथ रहनेसे ही प्रतीत होते हैं, नहीं तो दूरके ढोल सुझावने लगते ही हैं। हरनामदासके चरित्रका

न केवल मैंने अध्ययन ही किया, वरन् उसकी एक-एक बातको मैंने मालूम करनेकी चेष्टा की। हरनामदासके विषयमें मैंने जो प्रश्न किये, उनका उत्तर तो मिला ही, साथमें प्रमाण भी मिला।

×

×

×

×

अम्बाला जिलेमें विरामपुर (पो० बेला) नामका एक गाँव है। हरनामदासका जन्म वहीं हुआ था। उसके दादाको महाराजा रणजीतसिंहसे जागीर मिली थी। हरनामदासके पिता विरामपुरकी एक विभूति थे। हरनामदासकी छोटी आयुमें ही वे चत्त बसे। माका विछोह पहले ही हो गया था। इस कारण बालक हरनामदासका लालन-पालन उसके चाचापर पड़ा। चाचा उसे वेहद प्यार करते थे; पर हरनामदासकी चाचीका व्यवहार उसके प्रति न तो मातृवन् था, और न चाचीका-सा। उसके चाचा इस बातको जानते थे; पर उस स्त्रीके आगे किसीकी नहीं चलती, जो घरकी मालिकिन कही जाती है। नौकरशाहीके कारनामोंको न देखकर कोई घरकी नौकरशाही स्वरूपा उस स्त्रीको देख ले, जो अपने बच्चों और अपने पतिके अतिरिक्त औरोंको गुलाम समझती है। ऐसी स्त्रियोंकी संकीर्णता और स्वार्थपरतापर ही सम्मिलित कुटुम्बकी नौका टकराकर चूर-चूर हो जाती है। ऐसी स्त्री सीधी-सादी स्त्रियोंको अपनी चाल-बाजीसे भूठा भी साबित कर देती है। बस, नौकरशाहीके-से सभी ढोंग रचती है। यदि इस व्यवहारसे तंग आकर कोई विद्रोह कर दे, तो आँसू बहाकर कहती है—“मरनेके बाद मैं

क्या छातीपर रख ले जाऊँगी।” छातीपर रखकर तो कोई नहीं ले जाता, पर जमादारी नहीं छोड़ी जाती। हरनामदासको खाने-पीनेका कष्ट न था। घर भरपूर था। चाचाका दुलार था; पर चाचाका प्रेम चाचीकी जमादारीके कारण नहींके बराबर था। जहाँ चाचा घरसे दूर होते, चाची हरनामदासको दुत्कारती और धमकाती। घरकी मालिकिनकी जमादारी बड़ी भयङ्कर होती है। वह मारती भी है और रोने नहीं देती। हरनामदासको घर बूचड़खानेसे अति भयंकर मालूम होता था। कहीं भाग जानेको आत्मा तड़प रही थी।

×

×

×

×

सन् १८६५ में नौ वर्षके बालक हरनामदासने अपनेको मातृभूमि से सैकड़ों मील दूर पाया; पर उसके लिए घरके नरकसे बसरा स्वर्गतुल्य था। उन दिनों पर्शियन आयल कम्पनीका दौर-दौरा था। नासीरियासे मिट्टीका तेल लानेके लिए वहाँ पाइप लगाये जा रहे थे। कम्पनीका दफ्तर अबादानमें था। हरनामदासको भी कम्पनीकी नौकरी मिल गई, और वेतन था ३५) मासिक। कम्पनीके संचालकोंको एक बड़ी दिक्कत बोलचालकी अरबीके न जाननेकी थी। जो अंगरेज आता था, वह बोलचालकी अरबी सीखनेका प्रयत्न करता था। बिना उसके वहाँके लोगोंसे वार्तालाप और व्यापार करनेमें बड़ी कठिनाई थी। कम्पनीके नौकर टूटी-फूटी अरबीसे काम चलाते थे। हरनामदासका काम था वहाँपर पाइपोंकी ढिमरियोंको कड़ा करना। उमर थोड़ी

थी, और इस कारण वह अरबी लोगोंके घरोंमें बेधड़क चला जाता था, और बच्चोंमें खेल भी आता था। एक विदेशी अबोध बालकको देखकर अरबी स्त्रियाँ उससे बातें करने लग जातीं, और उसके मातृ-विछोहपर तरस खातीं। हरनामदास इस प्रकार बोलचालकी अरबी जानने लगा। बच्चोंमें खेलने जाता, और वहाँकी स्त्रियोंसे बातें करता। बोलचालकी भाषा सीखनेके लिए सबसे अच्छा ढङ्ग है भाषा-भाषियोंके गार्हस्थ-जीवनसे सम्पर्क। बालक होनेके कारण हरनामदासको ऐसा अवसर मिला। हँसी और खेलका आनन्द समवयस्कके साथ ही होता है। बच्चे और जवानके खेलमें हृदयकी कलीकी सुगन्ध-संचारिणी चटकन नहीं। हरनामदासका खेल-कूदका समय अरबी बच्चों और स्त्रियोंमें बीतता। फल स्वरूप बोलचालकी अरबीपर उसका असाधारण अधिकार हो गया।

+ + + +

पर्शियन आयल कम्पनीके प्रधान इञ्जीनियर अपनी नव-विवाहिता बधूके साथ एक दिन टहलने जा रहे थे, और दोनोंमें इस बातपर बाजी लगी हुई थी कि कौन अरबी अधिक जानता है। किसी शब्दपर वाद-विवाद था। पतिका कहना था कि अमुक चीजका अमुक अरबी नाम है, और पत्नी उस चीजका कोई दूसरा ही अरबी नाम बताती थी। हरनामदास अरबी लोगोंके घरसे निकल रहा था, और उसने दोनोंकी बातें सुनीं। दोनोंको गलत पाकर बाल-स्वभावानुसार हरनामदासने मुसकरा

कर कहा—“आप लोग दोनों गलत हैं।” यह कहकर उसने उस चीज़का अरबी नाम बता दिया। इञ्जीनियर और उसकी स्त्री हरनामदासकी बातोंसे बड़े प्रभावान्वित हुए, और एक अरबीको बुलाकर उन्होंने हरनामदासकी बातकी सत्यताकी जाँचकी और उस अरबी और हरनामदासमें बातें करा दीं। हरनामदासने फर्राटेके साथ अरबी बोली। साहबकी आँखें खुलीं। मेम तो उसपर मुग्ध हो गई, और अगले दिनसे हरनामदासकी ड्यूटी साहबके बैंगलेपर लग गई। काम था साहब और मेमको बोलचालकी अरबी सिखाना। मजदूरीके कामसे एक प्रकारकी अध्यापकी मिली।

इधर हरनामदास तेज़ीसे बालकपनसे युवावस्थाकी ओर कदम बढ़ा रहा था। वहाँके रहन-सहनसे उसको खाने-पीनेका शौक लग ही गया था। मयनोशी तो वहाँकी साधारण-सी बात थी। मयनोशीके साथ जवानीकी अलमस्ती भी बढ़ रही थी। युवावस्था उसके चेहरे-मुहरेसे फूट-फूटकर निकल रही थी। चितवनमें वह बालकपनका भोलापन न था। हँसीमें वह दैवी माधुर्य न था। और तो और, प्रकृतिने भी युवावस्थाका साइन-बोर्ड—दाढ़ी और मूँछ—मुँहपर लगा दिया था। ईरानकी वायुने कहा—“ए जवांमर्द, नौकरीकी जड़ आकाशमें है। वह गुलामीका परिष्कृत रूप है। तू आगे बढ़ और व्यापार कर। नौकरीकी साँकरी बटियापर कब तक चलेगा ?” युवा हरनामदासने होटोंपरके दोनों मिक्कनातीसों—मूँछों—पर हाथ फेरा और

कहा—‘एवमस्तु ।’ अगले ही दिन मेम साहबसे उसने कहा—
“मेम साहिब, मैं तो अब दुकान करूँगा । नौकरी न मुझे पसन्द है, और न उसमें मुझे मजा ही आता है ।”

मेम हरनामदासपर बहुत प्रसन्न थी, उसने अगले ही दिन दर्जनों मजदूर लगाकर हरनामदासकी दुकान तैयार करा दी । बाँस और लकड़ीके तख्तोंसे कामचलाऊ बहुत बढ़िया दुकान बन गई, और तीसरे दिनसे बिक्री होने लगी ।

अबादानमें पर्शियन आयल कम्पनीकी सीमाके निकट पहले एक ही दुकान थी । प्रतिद्वन्द्विताके अभावके कारण दुकानदार ग्राहकोंकी परवा न करता था । कसके दाम लेता था, और तिसपर नखरे दिखाता था । हरनामदासकी दुकान खुलते ही ग्राहकोंकी आमदका तूफान उसकी ओर आने लगा, और अन्धा-धुन्ध बिक्री होने लगी । इसके अतिरिक्त कुछ अनुचित व्यापार भी हुआ, और वह था लुका-छिपाकर मंजूरशुदा मिक्कदारसे अधिकमें शराबका धिकना । कस्टमवालोंकी जेबें गरम की गईं, और किसी दूसरी चीजके बहाने हरनामदासकी दुकानमें सैकड़ों दर्जन शराबकी बोतलें भी आने लगीं । एक वर्षमें ही अस्सी-हजारका मुनाफा हुआ, और वह रकम प्रतिवर्ष बढ़ती ही गई ।

पापमें पतनके बीज स्वतः ही हुआ करते हैं, और समय पाकर वे ऐसे फूट निकलते हैं, जैसे जमीनमें छिपे घासके बीज बरसात का पानी पड़ते ही उग पड़ते हैं । लोगोंको हरनामदास

की इस सम्पत्ति-नदीकी चढ़ती और बढ़ती धारको देखकर ईर्ष्या हुई। उन्होंने कम्पनीके मैनेजरसे शिकायत की कि हरनामदास चोरीसे शराब बेचता है। बेचते सब थे, और शिकायत करने वालोंने इस कारणसे शिकायत न की थी कि चोरीसे शराब बेचनेके वे विरोधी थे, वरन् इसलिये कि वे उस प्रकारके व्यापारमें अपना भाग चाहते थे। तहकीकात हुई। हरनामदास अपने पुराने मित्र इंजीनियर तक से लड़ बैठा। उसने इस बातको स्वीकार किया कि वह इस प्रकार शराब बेचता है; पर उस प्रकारके व्यापारमें गोरोंकी शै ही नहीं, वरन् हाथ भी था। गौरांग प्रभुओंको यह बात असह्य थी। चोरीसे शराब बिके ! कोई बेचे, और चाहे कोई पिये; पर कानून और प्रकाशनमें यह बात न आये कि गोरे लोग भी उस काममें शामिल हैं। हरनामदासकी हितैषिणी मेम उस समय विलायतमें थी, और उसके पतिसे, जो अब मैनेजर था, हरनामदासकी ठनी हुई थी। मुक्तदमेबाज़ीमें लगभग सब रुपया फुँक गया। मुक्तदमा-रूपी कुम्भज उस दो-चार लाखकी निधिको सूँत गया; पर हरनामदासकी बात रह गई।

+ + + +

सन् १६१४ का महायुद्ध-रूपी ज्वालमुखी फूट पड़ा। सम्पूर्ण यूरोप धुआँधार हो उठा। टर्कीने इंग्लैंडके विरुद्ध मोरचा लिया, और जर्मन सैनिक जनरलोंने ऑगरेजोंको चारों ओर परेशान कर दिया। जर्मन और तुर्कोंके आक्रमणोंको रोकनेके लिये

जनरल टाउनशैंड बगदादकी ओर भेजे गये। जंगी जहाज 'स्पैकिल' बगदादकी खाड़ीमें तोपोंसे सुसज्जित खड़ा था; पर टाउनशैंडको ऐसे आदमियोंकी जरूरत थी, जो अरबीको खूब बोल लेते हों, और सैनिकोंको खाद्य-सामग्रीभी दे सकें। चिंता-मग्न जनरल टाउनशैंड गुप्त रूपसे पर्शियन आयल कम्पनीके दफ्तरमें आये, और ऐसे आदमीकी खोजमें लगे। मैनेजर तकको हरनामदासकी ही सिफारिश करनी पड़ी। यद्यपि वह हरनामदाससे खार खाये बैठा था; पर मरता क्या न करता। हरनामदासको छोड़कर वहाँपर कोई दूसरा ऐसा आदमी न था, जो बोलचाल की अरबीमें दत्त हो, और जो व्यापारको जानते हुए अपनी जान हथेलीपर लिये फिरता रहे। जनरल टाउनशैंडकी और हरनामदासकी बातचीत हुई, और उसी दिनसे दोनोंकी दोस्ती गँठ गई।

+ + + +

तूफानसे जैसे मरुभूमिमें टीले कहीं-कहीं जा बनते हैं, उसी प्रकार युद्धके तूफान कालमें सम्पत्तिकी ढेरियाँ लग गईं। पेरे-शैरों तककी बन आई। पाट, फाटका, रुई और युद्धकी सामग्री बेचनेवालोंकी पाँचों घीमें थीं। लाखों आदमी मर रहे थे। घायलोंके चीत्कार और तोपोंकी गर्जनासे सब दिशाएँ कॉप रही थीं। विधवाओंकी आर्होंसे सहृदयोंके टुकड़े हुए जाते थे; पर व्यापारी बन रहे थे। जिनको युद्धसे पहले बातचीत करनेका शऊर तक न था, वे ठेका या व्यापारके कारण नवाब बन रहे

थे। ऐसे कालमें हरनामदासकी कौड़ी चित्त पड़ी, तो क्या आश्चर्य। वह तो रणक्षेत्रमें था, जहाँ बीसियों बार बम उसके पास फटे, और जहाँ गोलियोंकी आकस्मिक वृष्टिसे उसके साथियोंके हाथके ग्रास हाथमें रह जाते थे। हरनामदासने यदि एक-एक दिनमें तीस-तीस हजार कमाया, तो क्या आश्चर्य।

बगदादमें हरनामदासकी धाक थी। जनरल टाउनशैंडके वह खास दोस्तोंमें था। उनके कैम्पमें वह किसी भी समय जा सकता था। सिपाहियोंके लिये वह हलवाईकी दुकान किये था, और उसकी कई दुकानें थीं, पर बगदादमें ही उसकी खास गद्दी थी।

वाई० एम० सी० ए० के साथ भी हरनामदासने काम किया था, और इतना अच्छा काम किया था कि स्वर्गीय के० टी० पालने उसके विषयमें समाचारपत्रोंमें लिखा। तीन-चार वर्षकी लड़ाईमें हरनामदासने पचास-साठ लाख रुपया कमाया।

+ + + +

तोपें गरजतीं और गोले उगला करतीं। युद्धकी भयंकरता उग्र हो रही थी; पर संसारके सभी काम हो रहे थे। हरनामदासका भोग-विलास भी जारी था। सायंकालको जब अवकाश मिलता, तब दोस्तोंकी बैठक जमती। ईरानी, इटालियन और फ्रांसीसी शराब—बढ़िया-से-बढ़िया शराब—के दौर रहते। उधर महफिल जमती और तबला ठनकता। बगदादकी बढ़िया-से-बढ़िया नर्तकीका नृत्य होता, और महफिलमें एक-एक हजार

का नोट फेंक दिया जाता। नर्तकी उसको आँखके पलकोंसे उठा लेती।

रातको सोते समय दर्जनो नौकर उसकी टहलमें लग जाते। कोई टाँगें दबाता, तो कोई उँगलियाँ चटकाता, और बगलमें पचास रुपया मासिक वेतन और खुराकपर कहानी कहनेके लिये रखा हुआ पठान कहानी कहने लगता। राम गलत तो हरनामदासको करना न था। उसके भोग-विलासकी एक दिशा थी। सिक्ख-धर्मका उसपर प्रभाव था। उसने उसकी रक्षा की। वहाँके समाजने सच्चरित्रताकी जो सीमा बाँध दी है, उसका उल्लंघन उसने नहीं किया। उसने वहाँ सत्रह विवाह किये थे, अरबी स्त्रियोंसे वहाँके कानूनके अनुसार निकाह नहीं, मुताह किये थे। कुछ दिनोंके लिये एकसे मुताह किया, और नियत समयके बाद उसको तलाक दे दिया।

इस आपत्तिजनक चित्रके पहलूका एक दूसरा रूप भी था। हरनामदासने युद्ध-कालमें बिक्रीकी आमदनीमें आनेवाली दुअन्नियों और चौअन्नियोंको गद्दीपर नहीं रखा। इन्हें वह गरीबों और जरूरतवालोंमें बाँट दिया करता था। स्मरण रहे, दुअन्नी और चौअन्नीसे प्रतिदिन सैकड़ोंकी आमदनी होती थी। हलवाईकी दुकानपर दुअन्नी और चौअन्नियोंका आना—अधिक संख्यामें आना—स्वाभाविक ही था। यदि एक रेजमेंटके लिये हजारोंकी खान सामग्री जाती थी, तो लड़ाईसे लौटे हुए सिपाही—कायरिंग लाइनसे दूर—खुद मिठाई लेकर खाते थे। गरीब आदमियोंकी

कन्याओंके विवाहका खर्च हरनामदास अपने ऊपर लेता था। जिसका कहीं ठिकाना न था; जिसको भाग्यने ठुकरा दिया था, उसका आश्रय हरनामदास था। कष्ट-पीड़ितोंकी रक्षाके लिए वह बड़े-से-बड़े गोरेको कुछ न समझता था। सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस और डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेटकी हैसियतके अनेक गोरोंको उसने पिटवाया था। जब जनरल टाउनशैंडके साथ उसकी दोस्ती थी और जब हरनामदास उनकी नाकका बाल हो रहा था, तब किसी टुटपूँजिये गोरेका क्या ताव, जो हरनामदासके विरुद्ध कुछ कर सके ! युद्ध-कालमें वर्ण-भेदपर ग्रहण लग गया था।

× × × ×

कुतका घेरा पड़ा, और जनरल टाउनशैंड तथा उनकी सेना फन्देमें फँस गई थी। हरनामदासने हवाई जहाजोंसे खाद्य-सामग्री पहुँचाई, और यदि पाँच मिनटकी देर हो जाती, तो हरनामदासको भी टाउनशैंडके साथ आत्म-समर्पण करना पड़ता।

× × × ×

दिनके बाद रात और रातके उपरान्त दिनका होना प्रकृतिका नियम है। युद्धके उपरान्त शान्ति हुई। हरनामदासने रुपया भी कमाया। यश भी कमाया। मेडल्स (तमगा) और धन्य-वादोंकी तो गिनती ही क्या। उसको पंजाबमें कुछ ज़मीन भी पुरस्कार-स्वरूप मिलनेकी आज्ञा हुई; पर बग़दादमें अब जनरल टाउनशैंड और मौडका दौरदौरा न था। ब्रिटिश साम्राज्यपर से

शनिश्चरका ग्रह हट गया था । वर्ण-भेदका ग्रहण भी समाप्त हो चुका था ।

गोरे और कालेके भेदका भूत अधिकारी गोरोंके सिरपर चढ़कर बोलने लगा । एक दिन हरनामदासकी गद्दीपर पुलिसने छापा मारा, और उसको यह हुक्म दिया गया कि तीन घण्टेके अन्दर बग़दाद छोड़कर हिन्दुस्तान चले जाओ । हरनामदास अपने नशेमें चूर था । उसने पुलिसकी धमकी को कंारा मज़ाक़ समझा ; पर वह मज़ाक़ न था । हरनामदासके कई आदमियोंको पुलिसन पहलेही से मिला रखा था । उन्होंने पुलिसके पड्यन्त्रमें सहायता दी । ठीक समयपर हरनामदासका जहाज़पर पुलिसके घेरेमें लाया गया । गद्दीपर उस समय अस्सी हजार रुपये थे । एक मुसलमान मुनीमको साथ लेकर हरनामदास, अस्सी हजार रुपयोंके साथ, हिन्दुस्तान को रवाना हो गया । ख़याल था युद्ध-सेवा और मेडलोंके जोरसे पुलिसके पड्यन्त्रको फोड़ दिया जायगा ; पर भाग्यका तख़्ता पलट चुका था । भारतवर्षमें पहुँचते ही मुसलमान मुनीम सत्तर हजार रुपया लेकर भाग गया ! विपत्तिका पहाड़ टूटकर सीधा सिरपर आ रहा था ; पर हरनामदासको कोई चिन्ता न थी । शेष दस हजार रुपया तो था ही, और अरबकी लाखोंकी सम्पत्ति उसीकी तो थी, ऐसा उसका ख़याल था । लाखों रुपया उसने भले कामोंमें व्यय किये थे । तेरह लाख तो उसने मुताह और रँगरेलियोंमें ही उड़ा दिये थे, और लाखों रुपया उसके

पास था। छै-सात दुकानें थीं, और भी सम्पत्ति थी; ऐसी दशामें मुनीमने नमकहरामीकी तो क्या बात है। 'हंडिया फूटी पर कुत्तेकी जात मालूम हुई' की-सी भावनासे हरनामदासने पहले गंगा-स्नानकी ठानी। विदेशमें चौबीस वर्ष रहनेके बाद वह लौटा था। गंगाजीके प्रति श्रद्धा होना स्वाभाविक था। फर्स्ट क्लासका टिकट कटाकर वह हरिद्वारके लिए रवाना हो गया।

हरिद्वारके समीप लुक्सर जंकशनपर हरनामदासने खिड़कीसे बाहर देखा, तो आर्तनादमें एक साधु कह रहा था—“बाबा, एक पैसा दे ! भगवान् तेरा भला करेगा। बाबा, कलसे कुछ नहीं खाया।” ऐसी घटनाओंसे हरनामदासका कोमल हृदय सर्वदा पिघलता रहा है। जब साधु हरनामदासके डब्बेके पास होकर निकला, तब वही आवाज लगाई। हरनामदासने एक खोमचेवालेको बुलाकर कहा—“इस साधुको भरपेट पूरियाँ और मिठाई खिला दो। दाम में दूँगा।” साधुसे बहुत न खाया गया। उस प्रकार कहकर माँगनेकी उसकी तो बान थी। साधुने पानी पीकर हरनामदासको आशीर्वाद दिया—“बाबा, तेरे बेटे अमर हों।” बेटोंकी बात सुनकर हरनामदासने मुसकराकर कहा—“हरिद्वार तो गंगा-स्नान करने नहीं जायगा ?”

“हाँ, बाबा चलेंगे”—कहकर साधु तैयार होगया।

+ + + +

हरिद्वारमें जाकर एक धर्मशालामें डेरा डाला । धर्मशालाके प्रबन्धकने साधुको धर्मशालामें ठहरनेकी आज्ञा न दी, पर दस रुपयेके एक नोटने प्रबन्धकको मोमकी भौंति पिघला दिया । रात हुई । हरनामदासने शराबके कई पैग चढ़ाये, और सुबह आँख खुली । साधु नदारद था, वह हरनामदासके बचे-खुचे दस हजार रुपयोंके नोटोंको लेकर चम्पत हो गया था ! महासागरके बीच, जहाँसे समुद्र-तट सैकड़ों मील हो, हरनामदासका जहाज डूब गया । पास-पल्ले कुछ नहीं था । कलाईमें बँधी साढ़े सातसौकी एक घड़ी थी । सोचा, उसीको बेचकर घर जाया जाय । घड़ी जो बेचनी चाही, तो चालीस रुपयेसे अधिक किसीने दाम न लगाया । हरनामदासके मनको ठेस लगी । सबके सामने उसने घड़ीको पत्थरपर रखा, और धड़ामसे उसे जूतेकी पेंडसे चूर-चूर कर दिया । लोगोंने उसे पागल समझा । कुछ आदमियोंकी भीड़ उसके चारों ओर एकत्र हो गई । हरनामदासके चेहरेपर गम्भीरता और उदासीनताका दृश्य था । लोगोंकी भीड़को चीरता हुआ बोला—“जब मेरे इतने रुपये काम न आये; जब साढ़ेसातसौकी घड़ीका मूल्य चालीस रुपया ही लगे, तब फिर वह घड़ी ही मेरी क्या सहायता कर सकती है ।”

+ + + +

काली कमलीवालोंके यहाँ एक विचित्र आकृतिका व्यक्ति रसोइयाका काम करता था । हालहीमें आया था । वहाँकी भीतरी हालत देखकर और दाढ़ीसे दोषोंको छिपातेवालोंकी वास्त-

विकतासे चकित होकर उसे बड़ा दुःख हुआ । नौकरी उससे कभी हो नहीं सकती थी । बदकलामी सहना उसके खूनमें न था । एक अधिकारीने उससे कुछ कह दिया, और उस रसोइयाने उसे ठोंक-पीट दिया, और नौकरी छोड़कर वह चला गया । पीटनेवाला रसोइया हरनामदास था ।

हरनामदासने बहुत हाथ-पैर पीटे । लिखा-पढ़ी बहुतकी । कागजात, मेडल्स और टाउनशैंड-मैत्री और युद्ध-सेवाकी तोपभी चलाई, पर कुछ न हुआ । न तो उसको बगदाद जानेका पास-पोर्ट मिला, और न सरकार—शायद ईराक-सरकार—के यहाँसे कुछ हुआ । जवाब आया, तो यह आया कि उस नामका कोई आदमी वहाँ न था, और न उसका वहाँ कुछ रुपया है । हरनामदासका कहना है कि चलते समय नशेमें उसके मुख्तारने, पुलिसकी शैसे, न मालूम किस कागजपर हस्ताक्षर करा लिये थे ।

+ + + +

जनरल टाउनशैंड और जनरल मौडके मित्र, कुतको हवाई-जहाजसे सहायता देनेवाले और स्वर्गीय के० टी० पालके परिचित हरनामदासको इस प्रकारके व्यवहार और अँगरेज अधिकारियों की क्षणिक स्मरणशक्तिपर इतनी ग्लानि हुई कि उसने अपने कागजात, सर्टीफिकेट, पत्र और मेडल्स गंगाजीके गर्भमें अर्पित कर दिये । वह अपने पुराने वैभवको भुलाने लगा, और अति साधारण व्यक्तिकी भाँति उसने अपना जीवन-क्रम बना लिया ।

किसीको उसकी पूर्व दशा, इतने रुपये और टाउनशैंड-दोस्ती का सहजमें विश्वास नहीं हो सकता । स्वयं मुझे नहीं हुआ था; पर जब मैंने कागजात देखे और सर्टीफिकेट तथा पत्रों का अवलोकन किया, तब अपने भ्रमपर बड़ा क्षोभ हुआ । संसारमें कुछ घटनाएँ ऐसी होती हैं, जिनको हम अपने संकीर्ण अनुभवकी कसौटीपर कसते हैं, और हरएकको अपने मानसिक क्षितिजके भीतर ही समझते हैं ।

+ + + +

हरनामदाससे मैं सन् १६२८ से भलीभाँति परिचित हूँ । उसके पास रुपया नहीं है; पर दिल वही है, वही उदारता है । यदि उसके पास चार-पाँच रुपये हुए और उसने किसीको कष्टमें देखा, तो उसकी सहायता करनेमें वह कभी नहीं चूकता । सेवा करना उसका खास गुण है । साधारण-से-साधारण आदमीसे वह सैकेंडोंमें दोस्ती कर लेता है । किसीसे कुछ माँगना उसके लिए हराम है ।

मैं उसके दोषोंको भी जानता था । शराब, सिगरेट, अफीम, गाँजा और भोंग—सबकी उसे आदत थी । शराब तो बगदादी बीमारी थी । सिगरेट साधारण-सी बात हुई । अफीम दमके रोगको दबानेके लिए खाई जाती थी । गाँजा और भोंग ऋषिकेशमें साधुओंने पिलाना प्रारम्भ करा दिया था । मैंने एक दिन दुखी होकर उससे कहा—“हरनामदास, ये नशे तुम्हारे नामपर बढ़ा लगाते हैं । तुम्हारे रूपके अनुरूप नहीं हैं ।

इनका छोड़ना तुम्हारे लिए असम्भव जरूर है; पर क्या तुम शराब और गाँजा नहीं छोड़ सकते ?” हरनामदासने कोई उत्तर नहीं दिया। देशमें शराबखोरी और अन्य मादक द्रव्योंके विरुद्ध आन्दोलन भी था। सायंकालको हरनामदासने सिगरेट, गाँजा और अफीमकी पुड़ियोंको फेंक दिया, और सब नशोंसे तोबा करली। एकदम छोड़नेसे उसे काफी कष्ट हुआ। मरणासन्न हो गया; पर व्रतसे वह टला नहीं, और आज तक वह उसपर डटा है। किसी प्रकार उसके पास फिरसे रुपयाभी आ जाय, तो भी, वह मदिरापान या कोई और नशा न करेगा—ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है।

+ + + +

जनवरी सन् १९३१ में मैं देवघरसे कलकत्ते आया तो तुलापट्टीमें हरनामदासको रोग-ग्रसित पाया। कलकत्तेकी तुलापट्टी एक तो वैसे ही भट्टी-सी बनी रहती है, तिसपर हरनामदासने वहाँ छोटी-सी दूधकी एक दुकान खोली थी। तुल्लार जो आया, तो तीन दिन तक चारपाईपर पड़ा रहा। कोई पानी देनेवाला तक न था। हम लोग (मेरे बड़े भाई और मैं) जो आये, तो हरनामदासकी तबीयत हरी हो गई। उसकी सूरत-शक्त ऐसी हो गई थी, मानो कब्रिस्तानसे उखाड़कर किसीको चारपाईपर रख दिया हो। दवा-दारू की और सिंघीबागान और चित्तरंजन एवन्यूके तिराहेपर उसको दुकान करादी। वहाँभी वह गरीबोंको न भूलता था। दो-एक कंगालको राजेन्द्र मल्लिकके यहाँ चाहे

भोजन न मिले; पर याचना करनेसे हरनामदासके यहाँ कुछ-न कुछ जरूर मिल जाता था ।

हरनामदासको हम लोगोंने समझाया—“तुम किसके लिए दुकान करते हो ? बाल-बच्चोंकी तुम्हें चिन्ता नहीं । अपनी जान क्यों ग्यटाईमें डालते हो ? कलकत्ता बगदाद नहीं है । यहाँपर वहाँकी-सी ईमानदारी नहीं । दुकान छोड़ मौज करो । कलकत्तेकी दुर्गन्धपूर्ण वायुका क्यों सेवन करते हो ।”

हरनामदासकी समझमें यह बात आ गई, और उसने ५ मई सन् १६३२ को कलकत्ता छोड़ दिया, और आजकल वह गाँवमें कुटियापर है । बिना कामके हरनामदाससे रहा नहीं जाता, सो सुबह उठकर, वह खुरपी लेकर पपीतों और नोबूके पेड़ोंको नराया करते हैं और मट्ठा और रोटी पर भगवान का नाम लेकर गुजारा करते हैं । वे नतो मेरे नौकर हैं, और न आश्रित, घरके एक आदमीकी तरह रहते हैं । बगदादी रईसको नौकर रखने की अपनी हैसियत नहीं । हरनामदास रईस ही हैं । पैसा पास नहीं है; पर तबोयत वैसी ही शाहाना है ।

हाँ, ईरानमें हरनामदासका एक मकान भी है, और उसका किराया भी अब तक उसके चचेरे भाईके नाम आता है । उसके गाँव में चचेरे भाई हैं । खूब सम्पन्न हैं । दो-चार बार बुलाने भी आये हैं; पर घरकी ओर हरनामदासके पैर नहीं पड़ते । घरसे दुखी होकर गया था, इसलिये, घरवालोंको केवल सत्तर

हजार रुपये दिये थे । उसका विचार है कि अब फक्कीराना हालतमें घाकी ओर न जाया जाय ।

+ + + +

हरनामदासकी जीवन कथा बड़ी उपदेशप्रद है । धन-सम्पत्ति के गर्वसे मदान्ध लोगों को उससे शिक्षा लेनी चाहिये । मनुष्यके भाग्य पलटनेमें कोई देर नहीं लगती । धन और शानका घमंड वृथा है । अकबर और शाहजहाँके अनेक वंशज टुकड़े-टुकड़े-के लिये तरस रहे हैं ।

हरनामदासकी कथा स्मरणकर हृदयसे एक ठंडी साँस निकलती है, और कानों में यह गूँज होने लगती है:—

“जिनके तबेलों बीच कई दिनकी बात है,
हरगिज न था दुराक्रियो अरवीका वाँ शुमार ।
अब देखता हूँ मैं कि जमानेके हाथसे,
मोचीसे कफ्शपाको गठाते हैं वह उधार ।”

गीली लकड़ियाँ



प्रातःकाल चार बजेका समय और शरद ऋतु । पर कहाँकी शरदऋतु ? दक्षिण भारतकी सुहावनी शरदऋतु ? नहीं, साइबेरियाकी, जहाँपर मृत्यु-तुल्य शीतसे लोगोंके अंग-भंग हो जाते हैं और नासिकाका अग्र-भाग गलकर कभी-कभी गिर पड़ता है । ऐसे ही समयमें साइबेरियाके एक कैदखानेसे, आजन्म निर्वासित एक कैदी, अवसर पाकर, निरीक्षकोंसे आँख बचाकर, बन्दीगृहसे बाहर निकला ।

क्यों ?

इसलिये कि उसकी धमनियोंमें गर्म खून था । आत्मामें बलिष्ठता थी और थी हृदयमें एक आग जिसको साइबेरियाकी विकट सर्दी भी न बुझा सकी थी । उसके रोम-रोमसे क्रान्ति की चिनगारियाँ प्रस्फुटित होरहीं थीं । बिना कुछ काम किये उसे अपना जीवन भार-सा प्रतीत होता था । कैदखानेमें आजन्म रहकर—उसे मर ही तो जाना था ? इसी कारण उसे वहाँका

जीना हराम हो रहा था क्योंकि 'वही है मौत कि जीना हारम हो जाय ।' और कैदखानेके

बाहर क्या था ?

हृत्तर-हृत्तर करके बर्फका अंधड़ (Blizzard) चल रहा था । उस बन्दीगृहके चारों ओर सैकड़ों मील तक हिमाच्छादित मैदान था । उस निर्जन, श्वेत और शीतके साम्राज्यको पक्षी तक पार नहीं कर सकते थे । हाँ, हिमांधड़ रूपी यम अपने असंख्य कम्पायमान शब्दोंसे रतजगा कर रहा था । किसी जीवधारीका यह ताव न था जो उसका मुकामिला करता । बर्फका भालू लुका-छिपा लम्बी शीत-निद्रा (Hibernation) में लीन था । भेड़िए टोली बाँध-बाँध कर सैकड़ों मील दूर रोज़ीकी तलाशमें अपनी जीभें लप-लपाते फिर रहे थे । बस वह कैदी ही था जो जीवनपर बाज़ी लगा कर बाहर निकला । पर वह

गया कहाँ ?

गया कहाँ ? वही हिमांधड़में वह प्रसन्नवदन चल पड़ा । वहाँसे एक मीलकी दूरीपर एक पड़ाव था जहाँ पर लकड़ियों का ढेर रहा करता था और गरमियोंमें जहाँ बतखके शिकारके लिये लोग आया करते थे । वह चिरान (लकड़ी चीरने का-स्थान) का स्थान था । वहाँ पर वह

कैसे पहुँचा ?

लड़खड़ाता, गिरता, पड़ता, घुटनोंतक बर्फमें फँसकर कराह-कराह कर निकलकर, आँखों और माथेसे बर्फके टुकड़े

हठाता हुआ, वह व्यक्ति उस ओरको बढ़ा। अंधड़के चपेटोंसे वह घबरा नहीं रहा था वरन् एक विकट दार्शनिककी भाँति उस सन-सनाते हुए अंधड़से मुस्कराता हुआ बातें करता जाता था। वह कहता जा रहा था कि “जब तक रूसके लेखकोंकी लेखनीमें ज़हरीले साहित्य-रूपी कीड़ोंके लिए बिच्छूके डंक जैसा तीखा-पन न होगा, जब तक उसके कार्यकर्त्ता अंधड़की भाँति अनवरत रूपसे काम न करेंगे, जब तक वे असन्तोषकी ज्वाला प्रज्ज्वलित न करेंगे और जब तक उनका एक-एक वाक्य सत्यरता, पाखण्ड और विलासिताकी पीठपर हंटरका काम न करेगा तब तक रूस स्वतन्त्र न होगा। रहा मेरी, सो क्या चिन्ता? जीवनकी मंजिले मकसूदपर पहुँच गया हूँ। स्वतंत्र हूँ, स्वच्छन्द हूँ! इसी अंधड़के समान इसीमें लीन—तन्मय—होकर मेरी आत्मा गरीबों और पीड़ितोंको आह्वान करेगी कि “प्यारे देश-वासियो! अंधड़ के समान तुम भी प्रलयंकर हो।” इस मादक भावनाके सहारे वह एक मीलकी दूरीपरके निर्दिष्ट स्थानपर पहुँचा। इतनी दूरीमें शीतके प्रकोपके कारण उसका सम्पूर्ण शरीर सुन्न हो गया था। हृदय-कोष गर्म खूनको पम्प करता था! पर बाह्य शीतका प्राबल्य था। उसकी आत्माकी प्रबलता ही उसे वहाँ तक ला सकी थी।

वहाँपर उसने सूखे तख्तोंके ढेरमें आग लगा दी। उसमें शीघ्र ही आग पौँडकर चटक-चटक कर जलने लगी। तापनेसे उसके प्राण-से लौटने लगे। अंधड़पर बिगड़कर और रोषपूर्ण चपलतासे कोयले धधकने लगे। जलती हुई आगसे एक लकु-

टिया लेकर मुक्त कैदीने पासकी ही गीली लकड़ियोंके ढेरमें आग लगानी चाही ; पर फुस्स करके लकुटिया बुझ जाती । चटकते हुए कोयलों और दो-चार जलते चहलोंको उसने पासके ढेरमें डाला । पर उसमें आग न लगी । हाँ, धुआँ उठा । ऊपर की छाल भी जली पर प्रबल अग्नि नहीं धधकी ।

इस दृश्यको देखकर मुक्त कैदी मुस्कराया । धधकती हुई अग्निके कोयले चटककर बिहँसे और गीली लकड़ियोंके ढेरकी ओर संकेत कर बोले—“हममेंसे बहुतोंने कोशिश करली कि तुम भी जलो ; पर तुम नहीं जलीं । हमारे स्पर्श-सत्संगसे तुम केवल सुलग-सजग हो पाईं । अबोध बालिकाओं ! तुम अभी क्या जानो कि स्नेहाग्निसे जल मरनेमें क्या मजा है ? तुम अभी गीली हो । हममें भी अभी इतनी शक्ति नहीं—क्योंकि हम थोड़े ही हैं—कि तुम्हें तीव्र गतिसे सुखा सकें या गीली ही जला सकें । हमतो बुझते ही हैं पर अपने स्नेहाग्नि-चिन्हको तुमपर छोड़े जाते हैं ! शीघ्र ही कुछ दिन बाद तुम सूखकर खड़क हो जाओगी और अग्निके स्पर्शमात्रसे धधकने लगोगी । हम बुझते हैं और जलनेको तुम्हें छोड़ जाते हैं !!

+ + + +

आग बुझी । मुक्त कैदी प्रसन्नवदन उठा और अंधड़ने उसे अपने अंकमें, कुछ ही देरमें, यह कहते हुए सुला लिया कि तुम्हारी जीवन-ज्योति तो बुझ गई पर तुम्हारे जलाये हुए बुझ कर भी ठंडे नहीं हुए ।

वरदान



गोहाटीसे कुछ हटकर एक छोटा पहाड़ी गाँव एक विकट नालेके दोनों ओर बसा है। बरसातके पानीने रेत-रेतकर गाँवके दो भाग कर दिए हैं। लोगोंने बड़े परिश्रमसे पुश्ते लगाकर प्रकृतिके आक्रमण को रोकनेकी सफल चेष्टा की है; नहीं तो, न जाने कबका, वह गाँव कट-कटाकर नष्ट होगया होता। नालेके ऊपर एक सुन्दर-सी कुटिया है, जिसकी एक खिड़की नालेकी ओर है। खिड़कीमें होकर जब दीप-ज्योति नालेमें पड़ती है, तब गाँवकी देवी साकार-सी बनी एक आँखसे नालेको सतर्क देखती प्रतीत होती है कि कहीं छल-प्रपञ्चसे उस गाँव वालोंको नाला हानि न पहुँचाए।

उस कुटियामें एक तपस्विनी-सी युवती रहती थी। उसके रूपलावण्यको अंकित करना असम्भव-सा ही है, क्योंकि वह असाधारण रूपवाली थी। उसके कपोलोंकी लाली, नेत्रोंके तेज और मस्तककी आभासे दर्शकोंके हृदयमें स्वतः ही उसके प्रति श्रद्धा

हो जाती थी। पर जब वह जंगल-स्थित देवीके मंदिरमें प्रति दिन पूजाको जाती, तब यही भान होता, मानों विश्व का सौन्दर्य युवतीके रूपमें जा रहा हो।

मंदिरमें जाकर वह घंटों पूजा करती, माथाटेककर देवीकी आराधना करती, और रात बीतनेपर एक सघन वनमें प्रवेशकर एक झोंपड़ीके निकट खड़ी हो जाती। थोड़ी देर उपरान्त, कदाचित् पैरोंकी आहट पाकर, झोंपड़ीसे एक पूर्ण युवा निकलता, और दोनों प्रसन्न-चित्त रातकी नीरवतामें कुछ देर घूमते, और फिर वह युवती अपने गँदकी ओर चली आती। गाँव आते समय तारिका-मंडित रात्रिमें चन्द्रमाकी रश्मियाँ छन-छनकर पृथ्वीपर पड़े पत्तोंको कुछ स्पष्ट करके युवतीको देवलोककी सुन्दरीका रूप देतीं और वह गजगामिनी नपे-तुले क्रदमोंसे घरकी ओर बढ़ती और दो-चार बार उसके मुँहसे ये शब्द अटूट साहस के साथ निकल जाते—“इनको प्रसन्न करने के लिये मैं कौन-सी मनौती मनाऊँ ? कौन-सा अनुष्ठान करूँ, जो मुझे यह वरें ? कहते हैं, मैं आजन्म ब्रह्मचारी रहूँगा। देशकी खातिर मैं किसी सुन्दरीके मोह-पाशमें नहीं फँस सकता। प्रणय और गृहस्थीका चक्कर देशके सिपाहीके लिए हलाहल है। उफ् ! पुरुष कितने कठोर होते हैं। मेरे ऊपर तरस खाकर चन्द्रमा अपने प्रकाशसे पथ-प्रदर्शन करता है, पर नागेन्द्र बाबूको तरस नहीं आता। क्या मैं उनके ब्रह्मचर्य और देश-सेवाके व्रतमें बाधक हो सकती हूँ ? कदापि नहीं। उनकी जीवन-सरितामें अपनी सहिष्णुता और

ब्रह्मचर्यसे मैं और भी शक्ति-दायिनी होऊँगी ।”

..... × × × ×

“आज आपसे मैं कुछ स्पष्ट बातें करना चाहती हूँ ।”

“कीजिये ।”

“मैं आपसे प्रेम करती हूँ, पर कामुक दृष्टिसे नहीं ।”

“प्राणी मात्रसे प्रेम करना चाहिये । हाँ, राजनैतिक क्षेत्र की बात दूसरी है ।”

“मैं इस दार्शनिक दल-दलमें नहीं फँसना चाहती, और न विवाद करना चाहती हूँ । भावनाओं की शाद्वल भूमिमें तर्ककी शुष्कताका प्रवेश नहीं हो सकता । मैं आपसे प्रेम करती हूँ, आपकी सहयोगिनी बनने के लिए ।”

नागेन्द्र (गम्भीर मुद्रा से)—“रूपकी खान सुन्दरी ! मैं कुँवारा रहकर ही कुछ सेवा करना चाहता हूँ ।”

युवती—“क्या आप मुझे कामुकताका पिंड समझते हैं ?”

नागेन्द्र—“सो तो मैंने नहीं कहा । पर.....”

युवती—“पर क्या ? कहिए न ।”

नागेन्द्र—“बात यह है कि पानीका स्वभाव है ढलावकी ओर बहना, अग्निका स्वभाव है जलाना और इसी प्रकार स्त्री-पुरुष पति-पत्नीके रूपमें—ब्रह्मचर्य व्रतसे विचलित होते ही हैं । देश-सम्बन्धी अपनी साधना मैं नहीं छोड़ सकता ।”

युवती—“हर्मिअ न छोड़िए । मैं आपको उस पथ पर और अग्रसर करूँगी । आपका हाथ बटाऊँगी । वासना के

विरुद्ध युद्ध में आपकी साथिनी होऊँगी, और आपके पुण्य-प्रयास में विजय-माला पहनाऊँगी ।”

नागेन्द्र—“कौन जाने मेरे गले का हार सूली हो !”

युवती (कुछ व्यथित होकर)—“तो फिर आपके आदर्श के भंडे को लेकर आगे बढ़ूँगी, और स्वर्ग में आकर फिर आपसे मिलूँगी ।”

नागेन्द्र (युवती की आँखों से आँखें मिलाकर)—“क्या तुम्हारी साधना यहाँ तक पहुँच चुकी है ?”

युवती (कुछ लजाकर)—“हाँ मैं देवी के मन्दिर में यही साधना करती हूँ ।”

नागेन्द्र (निश्चल मुद्रा से)—“तो फिर तुम्हें वचन-बद्ध होना पड़ेगा—मेरी एक बात माननी पड़ेगी ।”

युवती (रोमाञ्चित होकर)—“हाँ, कहिए ।”

नागेन्द्र—“क्या तुम मेरी एक शर्त मानने को तैयार हो ?”

युवती—“हाँ”

नागेन्द्र—“मैं उसे वरदान कहता हूँ ।”

युवती—“आप उलटी बात कहते हैं । वरदान तो मुझे माँगना चाहिए, नकि आपको ।”

नागेन्द्र—“शाब्दिक दाँव-पेच से क्या लाभ ! मुझे ही माँग लेने दो । अच्छी बात है । कल रात के बारह बजे ब्रह्मपुत्र के किनारे, यहाँ से एक मील की दूरी पर, मिलो—घाट से हट कर दक्खिन की ओर बरगद के पेड़ के निकट ।”

×

×

×

×

प्रेम-विह्वल युवती अपनी मनोकामनाकी तरंगोंपर तैरती कल्पनाके भावी मनसूत्रे बाँधती, सुख और सुषमाका काल्पनिक प्रासाद-सा बनाती, उत्सुकतासे मार्गके रोड़ोंका एक ख्याल न करती, नियत स्थानकी ओर बढ़ी जाती थी। उसके पैरों के दबावसे पत्तियाँ खड़खड़ानेका शब्द करतीं। पेड़ों और झाड़ियोंसे अठखेलियाँ करता समीर उसकी साड़ीको गुदगुदा जाता, और चन्द्रमा उसकी गतिके साथ द्रुम-दलोंमेंसे झोंक-झोंककर देखता चलता।

बातकी बातमें वह निर्दिष्ट स्थानपर आगई। ब्रह्मपुत्रके वनःस्थल पर चन्द्रिकाकी रुपहली आभा थी। तटसे चालीस-पचास गजकी दूरीपर एक छोटी नौका डगमगा रही थी, और चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब उस नौकाका चरणामृत पान कर रहा था। घबराई-सी वह युवती खड़ी हो गई।

डोंडोंको रखकर नागेन्द्रने कहा—“आ गई!”

युवती (सहमती हुई)—“हाँ, पर आपतो इधर आइए, यामुझे भी ले चलिए।”

नागेन्द्र—“पर पहले वरदान तो दो।”

युवती—“इतनी दूरसे।”

नागेन्द्र—“प्रेम दूरीकी सीमा को नहीं मानता।”

युवती—“तो फिर कहिये।”

नागेन्द्र—“सुनो, तुम मुझे अपने पाससे दूर चले जानेकी आज्ञा दो।”

नागेन्द्रने गम्भीर मुद्रासे दोनों डॉड उठाए और युवतीसे कहा—“कहो, एवमस्तु ।”

सजल नेत्रोंसे, भराई आवाजमें, सब जोरलगाकर, युवती ने कहा—“ए-व-म-स्तु,” और शीघ्रही डॉडोंके छप्प छप्प शब्दमें वह छोटी नौका कहीं दूर चली गई ।

— — — — —

पीताम्बर

बोलती प्रतिमा—



पीताम्बर

असाढ़का महीना था। पहली भन्नके सम्पूर्ण लक्षण दिखाई पड़ने लगे थे। पछवाका जोर रुका और पुरवाका जीवन-स्रोत बह चला। तीतरपाँखी बदली उठ रही थी; पर गाँवके किसानोंके हृदयोंमें उमंगकी हिलोर न उठी। प्रत्येककी आकृतिपर वेदनाकी घटा छाई हुई थी। बात यह थी कि आस-पासके गाँवोंमें पशुओंके रोगकी महामारी फैल रही थी। खूनके दस्त-पेटकी चेचक (Rinderpest) —को बीमारीके प्रकोपके कारण हाहाकार मचा हुआ था। भाड़में जैसे चने भुनते हैं, वैसे ही रोज़ दस-बीस जानवर—गाय, भैंस और बैल—चट-पट मर रहे थे। अधिकांश जानवर बीमार थे। दो-चार ही अछूते बचे थे। ‘घरके सौ व्यक्ति मर जाँय, पर एक कमानेवाला—सबको रोज़ी देनेवाला न मरे भगवान् !’—की करुणध्वनि घरों और छप्परोँको पारकर मेरी कुटिया तक आ रही थी, मानो मेरी भर्त्सना की जा रही थी कि वह शिक्षा और अखबारनवीसी किस

कामकी, जो आड़े समयमें गाँववालोंकी एकमात्र सम्पत्ति—
बैलोंको बीमारीसे नहीं बचा सकती ।

×

×

×

×

“पण्डितजी, अब कैसे गुजर होइगी । बधिया हती (थी)
सो कल्लि मर गई । रुक्का (Pronote) करिकेँ बधिया लई ।
आज भैंसि बीमार ऐ । साँझ सबेरें बियानहार ऐ”—कातर
दृष्टिसे और भराई आवाजमें गोविन्दा चमारने कहा ।

“भई, क्या करूँ । कुछ समझमें नहीं आता । पशुओंकी
साधारण दवा-दारू मैं जानता हूँ । उससे काम नहीं चलता ।
रहे-बचे जानवरोंके टीका लगवा दिया है; पर बीमार जानवरोंको
कौन अच्छा करे ! डाकुर उस दिन साफ़ जवाब दे गया और
कह गया कि पीताम्बरसे अधिक मैं नहीं जानता । सो दवा
करते-करते और भाग-दौड़ करते बेचारा बीमार पड़ गया ।
सैकड़ों जानवरोंको उसने बचाया है और अब वह स्वयं खाट
गोड़ रहा है । कल ही उसके लिए मैंने दवा भेजी है”—सान्त्वना
देते हुए मैंने कहा ।

गोविन्दा—“परि पीतू आइ सकत ऐं । कल्लि मैंने चौतरा
(चबूतरा) पै बैठे देखे ।”

मैं—“हाँ, तबीयत ठीक है; पर चल-फिर नहीं सकता । और
फिर एकके यहाँ जानेसे चारों ओरसे दैया-तोबा मचैगी कि हमारे
पौहे भी देखो । इसलिए मैंने कहला भेजा है कि जब तक अच्छे
न हो जाओ, कहीं न जाओ ।”

गोविन्दा (लम्बी साँस लेकर)—“सो तौ ठीक ऐ; परि मेरी भैंसि मरि गई तौ फिर हिल्लौ (प्रबन्ध) नाएँ। लरिका-बारे सिब बिलखि-बिलखिकैं मरि जांगे ।”

मैं—“अच्छा जा । कुछ करूँगा ।”

+ + + +

“अरे भैया, बीमारी बड़ी करी ऐ । भैंसि गाभिन ऐ । कामु तौ तौ होइ जो भैंसिऊ बचि जाय और तौय (गर्भपात) ऊ न जाय”—पीताम्बरने गम्भीरतासे कहा ।

“हाँ, हकीम कामु तौ तबई बनै”—मैंने अनुमोदन करते हुए कहा ।

पीताम्बरने खेतोंसे कुछ जड़ी-बूटी उखाड़ी और दो आनेकी ओषधि पासके बाजारसे मँगाकर दी । भैंस अच्छी हो गई और ठीक समयपर उसने बच्चा दिया । गोविन्दाका उद्धार हो गया ।

+ + + +

पीताम्बर कुम्हार उन तपस्वी, ईमानदार, परहितकातर और परोपकारी महानुभावोंमेंसे था, जो निष्काम सेवाको मानव-जीवनकी भित्ति समझते हैं । वे सेवा करते हैं किसीको दिखाने और नाम करनेके लिए नहीं, वरन् इसलिए कि सेवा करना उनका स्वभाव है—कोयलकी भाँति, जो दूसरेके लिए नहीं, वरन् अपने लिए ही कण्टकित होकर मधुर आलाप करती है ।

पीताम्बर जातका कुम्हार, स्वभावका ब्राह्मण और पेशेसे

किसान था । मेरा पड़ोसी—पासके गाँव अंगदपुरका रहने-वाला—नैष्ठिक पीताम्बर पशु-चिकित्साका आचार्य था । पशुओंका कोई भी रोग ऐसा न था, जिसकी अचूक ओषधि वह न जानता हो । और ओषधि भी कैसी ? दस-बीस रुपएकी विलायतसे सील होकर आनेवाली दवा ? तोबा कीजिए । गाँवके किस आदमीमें इतना बूता है, जो जानवरोंकी ओषधिमें दस-बीस रुपए खर्च कर सके ? आदमियोंके इलाजके लिए तो रुपया-दो रुपया उनके पास है ही नहीं, जानवरोंके लिए इतना खर्च कहाँसे और कैसे करें ? पीताम्बरकी कीमतीसे कीमती दवाका मूल्य चार आनेसे अधिक न होता था । साधारणसी बीमारियोंके लिए, जिनके लिए अँगरेजी दवाकी कीमत चार-चार रुपया होती, पीताम्बरकी दवाका मूल्य कुछ नहीं था । कुछ नहींके मानी यह कि वह खेतोंसे ही जड़ी-बूटी उखाड़कर और घरसे हल्दी और फिटकरी मँगाकर अचूक दवा बना देता था ।

चारों ओर बीसों मील दूरसे उसके पास आदमी आते थे । बीमारीके दिनोंमें तो वह परेशान रहता था । घरपर परोसी थाली रखी है । उसकी स्त्री बाट जोह रही है । हाथ धोकर पीताम्बर चौकेमें जाना चाहता था कि घिघियाते आदमी आगये कि पासके ही गाँवमें बैल बीमार है । खेत भरनेको पड़े हैं । जुताई आधी रही है । बैल अच्छे न हुए तो सर्वनाश हो जायगा ।

पीताम्बर भुल्ला जाता, उसकी स्त्री बड़बड़ाती कि रोटी बनी

रखी है। जानवरोंके इलाजकी ढोलकी गलेमें डाल ली है। अपने यहाँ कोई बीमार होता है, तब कोई पूछने भी नहीं आता।

किसी प्रकार पेटमें रोटी डाल पीताम्बर पासके गाँवमें दवा देने जाता।

पीताम्बर सफल किसान था। दिन-रात चींटीकी भाँति लगा रहता और जब लोग अपने पशुओंको दिखानेके लिए पीताम्बरको बुलाने आते, तब वह आगन्तुकोंमेंसे किसीको अपने स्थानमें काम करने छोड़ देता और पशुओंकी चिकित्सा करने चला जाता।

नंगे पैर, मैले-कुचैले कपड़े पहने इस सीधे-सादे देहातीको देखकर कोई यह नहीं कह सकता था कि वह अपने विषयका आचार्य होगा—असाधारण आचार्य। हजारों पशुओंका उसने इलाज किया—दो-एक हजारका नहीं, दसों हजारका, और जितने पशुओंपर उसने हाथ डाला, उनमेंसे आठ ही मरे थे !

बात यह थी कि उसके हाथमें यश था। यशकी बातको वैज्ञानिक न मानें; पर जो पावन भावनाओंमें विश्वास रखते हैं और जिनका ख्याल है कि प्रेमकी चितवन, माँके आशीर्वाद और विरहकी तड़पनसे हृदयपर आघात होता है, वे समझ सकते हैं कि ओषधि देते समय पवित्र हृदयसे निकले आशीर्वादके भी कुछ मानी होते हैं। ऐसा व्यक्ति दवा देते समय प्रभुसे प्रार्थना करता है कि भगवन्, आपकी बनाई ओषधिको मैं आपके ही बनाये जीवको दे रहा हूँ। मैं तो कोई चीज नहीं, आपकी

अनुकम्पासे रोगी अच्छा होगा और सुभे भी बार-बार न दौड़ना पड़ेगा—ऐसी ही भावनासे पीताम्बर ओषधि देता था ।

ऐसे सफल चिकित्सककी आमदनी क्या होगी ? प्रति पशु यदि वह चार आना भी फीस लेता, तो वह दस-बीस हजार कमा लेता ; पर पीताम्बर बड़प्पनकी कसौटी रुपया न मानता था । उसका दृढ़ विश्वास था कि हिन्दुओंके पुराने आदर्शके अनुसार ओषधि करनेके लिये कुछ लेना घोर पाप—जघन्य व्यभिचार है । शिक्षा, आयुर्वेद और संगीत स्वार्थके लिए नहीं, वरन् परमार्थ के लिए हैं । किसीका भला करके कुछ लेना वह पाप समझता था । जिसके यहाँ इलाजको जाता, खाना तो दूर, पानी तक न पीता । दो-चार बार पूछे जाने पर कि हकीम फीस क्यों नहीं लेते ? हकीम पीताम्बर बाल-स्वभावसदृश सरलतासे उत्तर देता, “पंडितजी, कुछ लेनेसे ओषधिका असर न रहेगा और मेरे गुरु की आत्माको कष्ट होगा ।”

हकीम पीताम्बरकी इन सरल बातोंकी फिलासफी कितनी गूढ़ है । उसके मतसे संग्रह करनेकी—गरीबोंसे फीस लेकर संग्रह करनेकी—लालसा भयंकर, दूषित और पापमयी थी, और दूसरोंकी निःस्वार्थ सेवा धर्मका परम पद था । नामकी उसे चाह न थी । हकीम पीताम्बरकी आकृति तो मानो कहती थी—

मुझ-सा कोई गुमनाम जमाने में न होगा,
गुम हो वह नहीं जिसपै खुदे नाम हमारा ।”

दो-चार बार बुलाकर मैंने उसकी निष्काम सेवाकी प्रशंसा की, तो वह मुसकराकर कहने लगा कि इसमें कौनसी तारीफ़की बात है। दूसरोंको दवा देना तो ठीक वैसा ही है, जैसे कोई अपने पेट भरनेके लिए रोटी खा ले। दवा देने से अपनी आत्माको सन्तोष मिलता है।

कई बार कोशिश की कि कोई पढ़ा-लिखा व्यक्ति वर्ष-दो-वर्ष साथ रहकर हकीम पीताम्बरसे उस विद्याको सीख ले; पर कोई व्यक्ति नहीं मिला। एक दिन मैंने ही दीक्षा लेनी चाही और उसकी ओषधियों, जड़ी-बूटियों और रोगोंके नाम लिखनेकी ठानी; पर पीताम्बर स्वयं सब जड़ी-बूटियोंके नाम नहीं जानता था। उन्हें पहचानता भर था। उसके गुरु एक साधूने उसे पशु-चिकित्सा सिखाई थी और जड़ी-बूटियोंको पहचनवा दिया था। इस कठिनाईके कारण हकीम पीताम्बरसे मैं कुछ न लिखा सका। दो-चार बार उसके फोटो लेनेका भी प्रबन्ध किया; पर कोई फोटोग्राफ़र न मिला।

अभी उस दिन अपने नये रोलैफ्लेक्स कैमरेके आनेपर हकीम पीताम्बरको मैंने बुलाया और फोटो लिया, तथा उसकी मुलाक़ात अपने एक साहित्यिक मित्रसे कराई। यह बात गत २७ जनवरी सन् १९३४ की है।

x

x

x

x

गत पहली मार्चको कलकत्तेसे लौटकर शिकोहाबाद स्टेशन पर पहुँचा और गाँव के लिए इक्का किया। अपने आदमीसे मार्गमें

मालूम हुआ कि हकीम पीताम्बरकी तबीयत बहुत खराब है। इक्का लेकर सीधा हकीम पीताम्बरके यहाँ पहुँचा—रास्ता ही अंगदपुरमें होकर था। मुझे देखकर पीताम्बरके मुरझाये चहरे पर उल्लासकी रेखाएँ अंकित हो गईं। उसकी आँखें कहती थीं कि बीमारीमें उसका भी कोई धनीधोरी है। कितनी खाम-खयाली थी हकीमकी ! सैकड़ों बार अपने और दूसरोंके पशुओं के लिए मैंने हकीम पीताम्बरको मौक्रे-बेमौक्रे बुलाया था। सान्त्वना देकर मैंने कहा—“हकीम, घबराओ नहीं। आज तो रात है। कल ही तुम्हारे लिए फ़िरोज़ाबादसे डाक्टर जीवारामजीको बुला दूँगा।”

“बस अबके बचा लो पंडितजी”—अवरुद्ध कंठसे पीताम्बर ने कहा। आँसुओंको रोकते हुए और ध्यान बटाने के लिए मैंने पीताम्बरको उसका फ़ोटो निकालकर दिया। देखकर वह प्रसन्न हो गया। घर आकर मैंने ‘नक्स वोमिका’ (Nux vomica 6x) की दो खुराकें भेजीं और डाक्टर जीवारामको पत्र लिखा।

अगले दिन प्रातःकाल ही नौकरी पर जाना था—हाजिरी थी। पर मनमें मैं लज्जित था कि नौकरीकी खातिर हकीम पीताम्बरको छोड़कर मैं क्यों जा रहा था ! स्वार्थ और अशिष्टताके अतिरिक्त और क्या कहा जाय ?

तीन दिन बाद मालूम हुआ कि हकीम पीताम्बर मेरी दवाके खानेके बाद ही बैलगाड़ीमें लेटकर आधी रातके समय—फ़िरोज़ाबाद गया। पेटमें भयंकर पीड़ा थी। १०४ डिग्रीका

ज्वर था। जाड़ा था और तेज हवा चल रही थी। जीवाराम-जीने एनीमासे दस्त कराया। पीताम्बरको कुछ चैन मिला। घरको लौट आया, और अगले दिन उसकी बीमारी अंतर्द्वियों में रोक (Intestinal obstruction) ने इतना जोर पकड़ा कि हकीम चल बसा ! उस बेचारेका ठीक इलाज भी न हो पाया !

× × × ×

आज हकीम पीताम्बर नहीं है। और उसके साथ उसकी अनुपम विद्या भी चली गई। अखबारी दुनियाके आदमी उसे नहीं जानते, और वे डाक्टर उसे क्या समझ सकते हैं, जो रोगीको मुफ्त ओषधि देकर उससे वोट लेनेके इच्छुक होते हैं और उससे वोट न मिलनेपर अपनी करनी का उलाहना देते हैं; पर हकीम पीताम्बर बहुत बड़ा आदमी था—कोरे धुआँधार और मेजतोड़ भाषण देनेवाले अनेक कार्यकर्त्ताओंसे बहुत ऊँचा। उसकी चरण-रजसे वे अपनी आत्माको उन्नत कर सकते थे।

हकीम पीताम्बरपर मुझे नाज था। इङ्गलैंड और अमेरिकाके मित्रोंसे मैं उसका परिचय कराकर कहता था कि मेरे गाँवके आस-पास सरकार पशुओंके लिए कुछ न करे। हमारा हकीम बर-क्रार चाहिये। ग्राम-सेवामें मैं उसे अपने-से बढ़कर मानता था। उसपर मुझे भरोसा था। ग्राम-सेवाके वृहत् काममें हकीम पीताम्बरपर बड़ी-बड़ी आशाएँ बाँध रखी थीं। बड़े-बड़े मंसूबे बाँधे थे; पर क्या किया जाय।

“हमने जो कोई शास्त्र चुनी शास्त्र जल गई।”

वसीयत

यों तो समाचारपत्र पढ़ना साधारण-सी बात है; पर पत्रकारके लिये, एक नहीं, अनेक समाचारपत्रोंका पढ़ना, उतना ही आवश्यक है जितना कि गोलन्दाजके लिए गोले और बारूद, अथवा मोटरके लिए पेट्रोल। एक दिन, डाकखानेसे दूरवर्ती एक गाँवमें बैठा एक समाचारपत्रकी प्रतीक्षामें मैं बेचैन हो रहा था। देशव्यापी आन्दोलनकी गतिविधिपर अधूरा लेख लिखा रखा था, और उसे तीसरे ही दिन समाचारपत्रके कार्यालयमें पहुँच जाना चाहिए था। जिस पत्रकी प्रतीक्षामें था उसके बिना लेखका शेषांश पूरा नहीं हो सकता था। डाक लानेवालेको दूरसे देखते ही नंगे पैर उसकी ओर लपका।

उसके हाथसे डाकका पुलन्दा छीनकर तर्जनीसे उस समाचार-पत्रके रैपरको फाड़ डाला। उस आन्दोलन-सम्बन्धी समाचार के लिये मेरी फैली हुई आँखें जैसे ही प्रथम पृष्ठपर पड़ीं, वैसे ही प्रथम समाचारसे—आन्दोलन ! सम्बन्धी समाचारसे

नहीं—हृदयमें आघात हुआ, कलेजेपर छुरी-सी फिर गई और एक दीर्घ निःस्वास छोड़कर मैं घबराकर रुक गया, ठीक उस भुक्कड़की भाँति जो पेटकी अग्नि बुझानेके लिए समूची रोटीको एकही घ्रासमें निगलनेका प्रयास करे, परन्तु रोटीमें छिपी पैनी कीलके मसूढ़ोंमें घुस जानेसे आह करके मुँह खोले-का-खोले ही रह जाय ।

वह समाचार था मेरे मित्रके छोटे भाईके निधनका । एक सप्ताह पूर्व ही मैं उनसे मिलकर आया था । उन्होंने एक दिन और ठहरनेका आग्रह किया था—चारपाईपर पड़े हुए कातर दृष्टिसे देखते हुए । और मेरे चले आनेके बारह घण्टेके उपरान्त ही उनका देहावसान हो गया । रह-रहकर मुझे अपने मित्रके रोगी भाईकी वह कातर दृष्टि स्मरण हो आती थी, उस चितवनका चित्र सामने खिंच जाता था और मैं अपनी मूर्खतापर पछता रहा था कि यदि मैं अपने अस्त-व्यस्त जीवनके बारह घण्टे उस रोगीके निकट बिता देता, तो मेरी तो कुछ हानि न होती; पर रोगीको न जाने कितनी सान्त्वना मिलती; उस निस्तेज शरीरमें लगे याचना-युक्त स्नेह-दीपकद्वयकी ज्योतिको मेरे प्रस्थानके समय अधिक परिश्रमसे तो न टिमटिमाना पड़ता । रह जानेसे न मालूम वे क्या इच्छा—अन्तिम इच्छा—प्रकट करते ? घरपर उनके भाई—मेरे मित्र—भी न थे, इसलिये मेरी वेदना और भी तीव्र हो गई थी ।

पाँच दिन बाद—तेरहवींके दिन—मातमपुरसीके लिये अपने मित्रके गाँवकी ओर चल पड़ा और रास्ते-भर यह सोचता आया कि अपने दुखी मित्रको किस प्रकार सान्त्वना दी जाय । वह बच्चे तो थे नहीं, जो इधर-उधरकी बातोंमें आ सकें, और फिर आत्माकी अमरता और संसारके जीवन-मरणके प्रश्नको भी वे खूब समझते थे । मैं यह भी समझता था कि भाईके निधनने उनके कोमल हृदयमें गहरा घाव किया होगा जिसकी मरहम-पट्टी कोरे शब्दोंसे नहीं हो सकती । सोचते-सोचते मैं इस नतीजे पर आया कि भावुकतासे उनके दुखी हृदयको तसल्ली दूँगा । गरमीसे व्याकुल व्यक्तिको जैसे पंखा झलनेसे चैन पड़ता है, वैसे ही गीता और उपनिषद्के शब्दोंसे उन्हें सान्त्वना देनेका प्रयत्न करूँगा । दुःख हृदयमें शून्य (Vacuum) पैदा कर देता है और वह प्राणप्राही चर्चासे भरा जा सकता है । मनको दुःखके केन्द्र-बिन्दुसे हटानेसे दुखी प्राणीका भार कुछ कम हो जाता है—तबीयतमें कुछ हलकापन मालूम होता है । यदि किसी प्रकार मेरी इन बातोंका पूरा असर न हुआ, तो कहूँगा कि भाईकी मौतपर शोक करना फ़जूल है । गान्धारीने तो अपने एक शत पुत्रोंके बधका शोक सहा । अभिमन्युकी मौतसे पाण्डव कर्तव्यच्युत नहीं हुए, तब हमारी गिनती किनमें है ? बस, तर्कके ऐसे अच्छोंसे सुसज्जित मैं मातमपुरसीके लिए गया; पर कभी-कभी मुझे अपनी बातोंमें उपदेशकपनकी गन्ध आती थी ।

एक कायरकी भौंति जो केवल साहसकी बातें ही करता है; पर हृदयसे डरता है, मैं अपने मित्रकी कुटियापर पहुँचा । देखा तो मेरे मित्र पत्र लिखनेमें व्यस्त थे । मुझे देखकर उन्होंने बड़ी आतुरतासे अपने कागज-पत्र समेट लिये और गम्भीर आकृति और शिकन पड़े माथेको ऊपर करके मेरी ओर देखा । मेरी आँखें जो उनपर पड़ीं, तो मैंने उनकी कुछ विचित्र मुखाकृति देखी । उनके भरे हुए कपोल, सुर्ख आँखें और काली बड़ी-बड़ी मूँछों और आकर्षक चेहरेके स्थानमें घुटे हुए सिर, विषाद और चिन्तायुक्त आकृति, निस्तेज कपोल और नीरस आँखोंके चारों ओर काले घेरोंको देखकर मैं सहम गया । ऐसा मालूम हुआ मानो उनकी आकृतिपर शोक मूर्तिमान होकर डेरा डाले पड़ा हो ।

“आओ भाई, बैठो । खूब आये”—कहकर उन्होंने मेरा स्वागत किया ।

“क्या आया ? कुटियामें आनेको पैर ही नहीं पड़ते थे । अनजान आदमीको यह थोड़े मालूम पड़ेगा कि का स्वर्ग-वास हो गया है ।”—मैंने सम्हलकर कहा ।

मित्र (साँस खींचकर और विषादसूचक आकृतिसे)—
“अरे भाई, मुझपर इन दिनों जो बीती है, वह वर्णनातीत है । इन दिनों ऐसा कोई नहीं आया जिससे दिल खोलकर बातें करता ।”

मैं—“आस-पासके सैकड़ों लोग तो आपके परिचित हैं ?”

मित्र—“हाँ हैं, और दस-दस और बीस-बीसकी टोलीमें मातमपुरसीके लिए वे आए भी; पर उनमेंसे अधिकांश स्वर्गीय भाईके निजी मित्र थे। वे यदि मेरी मृत्युपर उसके पास आते तो उसे सान्त्वना मिलती। मैं खूब रोया हूँ—इतना—सो भी अकेलेमें, स्त्रीके समान सिसकियाँ भरके—कि अश्रुकोष समाप्त हो चुका है। विसूचिकाकी अन्तिम दशामें जैसे सूखी उबकाई आती है, और कभी-कभी कुछ निकल भी जाता है, उसी तरह शोक-स्मरण-अग्निसे सन्तप्त हृदय रुधिरकी दो-चार बूँदोंको आँसुओंके रूपमें ढरका देता है।”

मैं—“सो तो ठीक है; पर इस प्रकारके शोकसे आप अपने स्वास्थ्यका नाश कर लेंगे।”

मित्र—“मैं जानता हूँ कि शोक करना वृथा है। इन दिनों गीता और उपनिषदोंके पारायण भी किए; पर न जाने हृदयमें क्यों हूक उठती है। स्मरणमात्रसे पुरानी स्मृतियाँ ताज़ी हो जाती हैं। बाल्यकालकी सुखद स्मृतियाँ साकार होकर हाथ बढ़ाती हुई आलिङ्गनको आती हैं—प्रेममयी और उल्लासपूर्ण स्मृतियाँ। और उनके सामने छोटे भाईकी मुस्क-राती, हँसती और रूठी सूरत रह-रहकर बातें करने और खेलने आती है। वह खेतोंका दौड़ना, आमोंके पेड़ोंका चढ़ना, कबड्डी खेलना और चीजोंके लिए मचलना—आह, प्रत्येक घटनाकी आत्मा आह्वान करती है……”

कहते-कहते मेरे मित्रके कपोलोंपर वेदना छा गई। हृदयमें बवंडर-सा उठा, और आँखोंसे बरबस आँसू निकलकर कपोलोंसे होते हुए मोतीके आकारमें पृथ्वीपर टपक पड़े; पृथ्वीसे वह फेंके न गये, और उसने उन्हें शीघ्र अपने गर्भमें रख लिया।

मैंने अपने आँसुओंको रोकते हुए कहा--“यह सब ठीक है; पर आपको धैर्यसे काम लेना चाहिए।

मित्रने आँसुओंको रुमालसे पोंछते हुए और अवरुद्ध कण्ठसे उत्तर दिया--“यह मैं सब कुछ जानता हूँ। जलेमें तो आग पड़ती ही है। अब क्या रोऊँगा? बहुत रो लिया। बड़े भाई भी अभी नहीं आये। कई रात इस कुटियाके चारों ओर अकेला पागलकी भाँति घूमता रहा हूँ और रोया हूँ।

“मैंने अपने इन्हीं क्रूर हाथोंसे पिता, एक बड़न और माताको चितापर भस्म होनेको रखा है। रोया भी था। कुटुम्बी, परिचित, अपरिचित और कई प्रिय मित्रोंको भी मेरी इन्हीं आँखोंने पार्थिव शरीरसे विदा होते देखा है; पर छोटे भाईके देहावसानसे मुझे जो क्लेश हुआ है, मेरी आत्माको जो धक्का लगा है, वह दूसरे ही प्रकारका है। इन दिनों मेरे ऊपर दुधारी तलवार चली है। और . . .”

मैं (बात काटकर)--“ठीक है; पर जो होना हाता है, वही हांता है। आपके घावकी मरहमपट्टी गीता और उपनिषद्से न हुई तो कोई कुछ नहीं कर सकता। पर भाई, कभी-न-कभी इस शरीरको छोड़कर सबको महायात्रा करनी है।”

मित्र (कुछ अन्यमनस्क होकर)—“भई, मैं यह नहीं कहता कि मेरा यह दुःख ऐसा है, जो विश्वको डुबा देगा। मेरे छोटे भाईका निधन कोई राष्ट्रीय विपत्ति नहीं है। मेरे लिए और आस-पासके गाँववालोंके लिए उसका उठ जाना एक भारी क्षति है। रही भूलनेकी बात, सो मैं जानता हूँ कि संसारकी प्रगति ही ऐसी है। पानीमें जब चोट लगती है, तब वह हट जाता है, और फिर वहीं आ जाता है। मानवी चोटमें सिकुड़ने की वह शक्ति न सही; पर विस्मृति जीवनकी एक आवश्यक चीज़ है। मुझे दुःख है, क्योंकि कौटुम्बिक जीवनकी विकरालताओंपर वही इस गृहस्थीकी नाव खे रहा था। मैं खूब जानता हूँ कि घरके सब काम होंगे। मेरे मरनेके बाद भी दुनिया चलेगी; पर मेरे शोकका गुरुताका एक और कारण है। सांकेतिक रूपमें भी आप उसे नहीं समझे।”

मैं (विस्मयसे)—“वह क्या ? शायद यह कि आपको या आपके बड़े भाईसाहबको घरपर रहना पड़ेगा।”

मित्र—“आप भी क्या कहते हैं ! घर और बाहर रहनेकी कौनसी बात है ? ऐसा तो करना ही पड़ेगा। जीवनका तारतम्य इस प्रकार लगा ही रहेगा। मेरा तात्पर्य यह है कि मुझे इन दिनों दो वेदनाएँ सहनी पड़ीं। तनक विचार कीजिये कि किसी आदमीके दिलमें आप बरछी भी भोंकें, और ऊपरसे गरम तेल भी छिड़कें। चाहिए तो यह कि शोकाकुल प्राणीको धैर्य बँधाया जाय। कोई धार्मिक चर्चा की जाय।

दिलको थमानेवाले पत्र लिखे जायँ, न कि उसका विरोध किया जाय और व्यंग्य कसे जायँ ।”

मैं—“मेरी समझमें बात नहीं आई ।”

मित्र—“आज छोटे भाईकी तेरहवींका दिन है । आप देख रहे हैं कि मैंने मृतक-भोज नहीं किया ।”

मैं—“ओह, अब मैं समझा । शुद्धि और मृतक-भोज करनेके लिए लोगोंने जोर दिया होगा, और आपने कुछ न किया होगा ।”

मित्र—“किया क्यों नहीं ? पौराणिक पद्धतिके अनुसार मैंने सब कुछ किया है—इसलिए नहीं कि वह वहाँ पहुँचता है । संसारके सब काम पहुँचने और न पहुँचनेकी भावनापर नहीं होते । जो कार्य केवल पहुँचनेकी कसौटीपर किया जाता है, वह निवृष्ट भौतिकवाद है । सूर्यको दीपक दिखानेसे सूर्यकी अपार प्रकाश-शक्तिमें कुछ वृद्धि थोड़े ही होती है । मानव जीवनकी भित्ति भावनाओं, भक्ति, श्रद्धा और आत्मतुष्टिपर है । इसलिए अपने भक्ति-प्रदर्शनके लिए मैंने अपने भाईके कर्म किये । पिंड दिये । जिस समय कर्म-पद्धतिमें भाईकी आत्मा—प्रेतात्मा—की तुष्टिके लिए धूप, दीप, उसीर, चन्दन और दूध देनेकी आज्ञा पाता था, तब मेरा शरीर रोमांचित हो जाता था । हृदयमें ज्वार-सा उठता था । मैं मन-ही-मन कहता—‘भगवन्, अपने छोटे भाईके लिए अपना शरीर भी दे सकता हूँ । मेरी इस भक्तिसे, इन पुनीत भावनाओंसे उसे सुख मिले ।’ हृदयमें

विषाद भी उत्पन्न होता था कि संसारकी क्या प्रवंचना है कि बड़ा भाई छोटे भाईका श्राद्ध करता है। जो पीछे आया था, वह पहले चला गया।

“मैंने कर्म-पद्धतिके अनुसार सब किया है। पद्धतिमें मैंने पढ़ा भी है; पर हिन्दू-समाजकी रूढ़ियाँ विदेशी शासनसे कम कठोर नहीं हैं। और...”

मैंने बात काटकर और अपने मित्रके हृदयकी हिलोर और उनकी तन्मयताको रोकते हुए कहा—“तो आज तेरहवींको कुछ दान-पुण्य भी नहीं किया गया ?”

मित्रने अपनी तेजस्वी आँखोंसे घूरते हुए कहा—“दान-पुण्यसे आपका तात्पर्य क्या वही है, जो लोग मुझे बताते थे ? मैंने गरीबोंमें ओषधि बाँटनेके लिए अपनी श्रद्धा और शक्तिभर उसीके नामसे सौ रुपये दान कर दिये हैं। हाँ, किसीको कुछ खिलाया नहीं।”

मैं—“और शुद्धिके दिन क्या किया ?

मित्र—“शुद्धि के दिन हजामत बना ली। कुटुम्बी लोगोंने भी हजामत बनाई, पर मैंने लोगोंको भोजन नहीं कराया। गावोंमें रीति यह है कि यदि कोई मर जाता है, तो शुद्धिके दिन कच्चा खाना बनता है। कढ़ी बनती है, और इसलिए ‘तेरी कढ़ी खाऊँ’ गालीके मानी हैं शुद्धिके दिनकी कढ़ी खाना। मैंने केवल यह किया कि सब चीजें बनवा लीं, और कुटुम्बके सबसे बूढ़े आदमी और कुटुम्बके एक भाईको, जिससे खास भाईका-सा व्यवहार

है, लेकर घर जाकर बैठ गया—उफ् ! अपने छोटे भाईकी कढ़ी खानेको ! सामने सब चीजें परोसी गईं, तब ग्रास ही न टूटता था । छोटे भाईकी मूर्ति सामने आकर कहती मालूम हुई—‘छोटे दूदू, कढ़ी तो चखो !’ संसारकी बातोंको निभाना ही है; पर जैसे ही ग्रास दाँतोंसे पकड़ा, वैसे ही कलेजा मुँहको आने लगा । एक हूक-सी उठी और ग्रास भीतरको न गया । भाईके प्रति प्रेमने भीतरसे जोर लगाया और ग्रासको गलेके नीचे न उतरने दिया । घबराकर, मुँहका मार्ग रुद्ध पाकर, हृदय तरल होकर आँखोंसे बरसने लगा । हृदय कहता था कि दाँत पहले ग्रासके बजाय मुँहे चावें । अन्तर्मुखी और वहिर्मुखी दुःखसे मैं आपेमें न था । वस, जीभसे सब चीजें चख लीं । आँसुओंकी झड़ी देखकर और दो साथियोंने भी रस्म अदा कर ली । पेट भरने वे भी न आये थे ।”

मैं—“और लोग भी चखनेमें शामिल हो जाते, तो क्या दर्ज था ?”

मित्र—“आपको इन बातोंका व्यावहारिक ज्ञान नहीं है । अपने कुटुम्बमें मैंने देखा है कि जवानकी शुद्धिमें बहुतसे लोगोंने चार-चार पाँच-पाँच बार माँगकर पेट भरके खाना खाया था—दावत समझकर ! इन शुद्धियोंमें मैं भी शामिल हुआ हूँ; पर मुझसे तो एक ग्रास भी नहीं खाया जाता । अपने भाईकी मृत्युपर शुद्धिमें न स्वयं खाया जाता था, और न खिलाया ही जाता था ।”

मैं—“तब फिर क्या ये बातें फ़जूल ही हैं, और यों ही बनी थीं ?”

मित्र—“मैंने तो यह नहीं कहा कि वर्तमान रीति-रस्मका आधार न था। मैं तो यह कहता हूँ कि हिन्दुओंकी सब रीति-रस्मोंका आधार मनोवैज्ञानिक और वैज्ञानिक था। देश और कालके अनुसार मनोपियोंने ये सब बातें प्रचलितकी थीं और ठीक ही थीं; पर अब केवल रूढ़ियोंका ही पालन होता है। उदाहरणके लिए इस शुद्धिको ही लीजिये। यदि कोई कुटुम्बी मरता था, तो शोक और विशादके कारण और दिवंगत आत्माके प्रति भक्ति प्रकट करनेके लिए कोई भी आमोद-प्रमोद, शृंगार और बढ़िया भोजन नहीं करता था, और जब तक मृतकके घरवालोंके यहाँ पूरी-कचौड़ी तथा अन्य पदार्थ न बन जाते थे—कढ़ाई नहीं चढ़ जाती थी—तब तक कुटुम्बके किसी औरके यहाँ भी कोई चीज़ें नहीं बनती थीं। शुद्धिके दिन हजामत बनाकर कच्चा-पक्का सामान बनता था, और जब मृतकके खास सम्बन्धी खा लेते थे, तब उसके बाद औरोंके यहाँ विशेष भोजन बना करता था। एक डिसिप्लिनकी बात थी।

“दान-पुण्यकी बात भी सोलहो आना ठीक है। जिसके पास रुपया है, उसे मृतककी स्मृतिमें उचित व्यय करना चाहिये; पर जिसके पास कुछ नहीं है, उसे कर्ज लेकर लकीर नहीं पीटनी चाहिए। रूढ़ियोंके निभानेमें समाज और जनताके दिखावेके लिए और अपनी बाह्वाहीके लिए लोग ऋण लेकर

कर्मकाण्डमें और मृतक-भोजनमें स्त्रर्च करते हैं; और जो नहीं करते, वे हेच समझे जाते हैं। कर्मकाण्ड और इन सब बातोंका कोई विधान नहीं, और जिनका है, उनको गरीब और अमीर समी निभा सकते हैं।

“रही धर्मकी, सो धर्मके अनेके वर्तमान रूप दूषित पूँजी-वादके विकृत रूप हैं। धर्म गरीब और अमीर दोनोंके लिए एक-सा है। धर्मका आधार है सचाई और कर्तव्यपरायणता—सो वे किसी वर्ग-विशेषकी बपौती नहीं।”

मैं—“आपको दिक् कैसे किया गया ?”

मित्र—“कुछ न पूछो भाई। नौकरशाहीका सामना करना बड़ा सरल है; पर सामाजिक रूढ़ियोंके पाशको तोड़ना बड़ा दुस्तर है। जब मैंने धार्मिक और सामाजिक रूढ़ियोंकी उपेक्षा की तब पहले तो बड़े-बूढ़ोंका डेपूटेशन आया कि कुलकी रीति और पुरखोंके नामपर ‘कारज’ होना चाहिये। मेरे इनकार करनेपर और पौराणिक पद्धतिका हवाला देनेपर करुण रससे काम लिया गया। मैंने स्त्रियोंको कहते सुना, ‘मैंने स्वप्नमें देखा है कि भूखे हैं। हाय, उनके बाल-बच्चे होते तो क्या उनका कारज नहीं होता।’ इन बातोंसे मेरे हृदयपर आघात लगता था, क्योंकि मैं जानता था कि स्वर्गीय भाईका घनिष्ठ प्रेम मुझसे ही था, और मुझसे अधिक उसका हित और कोई नहीं चाह सकता। इसके बाद व्यंग्य-वाण बरसाये गये। कहा गया कि चाहे सौ-दो-सौ हमारे पाससे स्त्रर्च हो जायँ; पर

‘कारज’ होगा। अर्थात् इस प्रकार मेरी गरीबीका उपहास किया गया। उस समय मेरी दशा उस खीकी-सी थी, जिसे अपने पतिकी लाशकी रक्षाके लिए मनुष्यभक्ती प्राणियोंसे लड़ना पड़ता है। दग्ध हृदयमें रोषका अन्धड़ उठता था, और मेरी तबीयत कहने लगती कि विधिकी कैसी विडम्बना है? कुटुम्बियोंका कैसा व्यवहार है? ‘ज़फ़र’ ने ठीक ही कहा है—

‘न कोई किसीका रफ़ीक़ है, न किसीका याँ कोई यार है।’

सभीको यही आशंका थी कि रूढ़ियोंके न निभानेसे मैं कुटुम्बके ऊपर अनिष्टकी आँधी ला रहा हूँ।”

मैं—“मुझसे तो भई, इतने विरोधका सामना न किया जाता। आपको बहुत बुरा लगा होगा।”

मित्र—“मैं भयङ्कर सामना करनेको तैयार हूँ। चाहे टुकड़े-टुकड़े उड़ जायँ, बातकी खातिर तोपके मुँहमें जानेको तैयार हूँ; पर सामाजिक और कौटुम्बिक जीवनकी रूढ़ियाँ घासमें छिपे काले साँपके समान हैं—तोपसे अधिक भयंकर।

“रही बुरे लगनेकी बात, सो पहले तो ज्ञानशून्य-सा हो गया—उस व्यक्तिके समान, जिसके पैरोंके नीचेसे सूलीका तख्ता खिंचने ही वाला हो; पर बादको, बहुत सोचनेके बाद, इस नतीजेपर आया कि राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक रूढ़ियोंके तोड़नेका ही नाम जीवन है। खुराफ़ातके विरोधमें मर मिटना ही जीवन है और उसीमें जीवनका स्वाद है। भोग-विलास तो हमारे वर्तमान जीवनमें कोढ़ है—पका फोड़ा है, जिसे काटकर

फेंक देना चाहिए। फिर मेरी हस्ती ही क्या है? जगद्गुरु श्री आदि शंकराचार्यके गाँववालोंने—उनमें कुटुम्बी भी होंगे—उनकी मृतक माताके शरीरको उठवानेमें सहायता तक न दो, और शंकराचार्यको अपनी माताके शवके टुकड़े करने पड़े। तनक खयाल कीजिये, माताके शवको काटनेके लिए उन्हें इस-लिए बाध्य होना पड़ा, ताकि वे उसको उठाकर श्मशान ले जा सकें—दाह-संस्कारके लिए !

“इस दृष्टिसे मैं और मेरा स्वर्गीय भाई बड़े भाग्यशाली हैं। मेरे पीछे बीसों आदमी उसे गंगाजीपर दाहके लिए ले गये। मेरे कुटुम्बमें आज तक किसीका दाह गंगा-तटपर नहीं हुआ।”

मैं—“मुझसे तो अब ये बातें अधिक नहीं सुनी जातीं; पर यह बताइये कि इन रूढ़ियों—सामाजिक तम—को कैसे दूर किया जाय ?”

मित्रने गम्भीरतासे कहा—“कैसे दूर किया जाय ? इसके लिए कोई बाज़ारू नुस्खा तो है नहीं, सत्य-पथपर शेरकी भाँति बढ़िये। समाजको—दूसरोंको—उपदेश देनेकी अपेक्षा स्वयम् अपना जीवन अमली बनाइए। मैं क्या कहूँ ! वेदान्तके अनुयायी पहले अपनी आध्यात्मिक उन्नति करते हैं। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति अपने सुधारका भरसक प्रयत्न करे।”

मैं—“अपनी ओरसे क्या भरसक प्रयत्न करे ? मान लीजिये, मेरी माताकी इच्छा है कि उनके देहावसानके उपरान्त ‘कारज’ कर्म और पिण्ड हों, तो उनकी अन्तिम इच्छाकी क्यों अवहेलना

की जाय ?”

मित्र—“कदापि नहीं । उसे शक्तिभर अक्षरशः पूरा कीजिये । हम लोगोंने भी अपनी माताका मृतक-भोज किया था । कर्म और पिण्ड सब कुछ किये; पर स्व० छोटे भाईकी ऐसी कोई इच्छा न थी । सब कुछ मेरे ही ऊपर था, सो मैंने अत्यन्त श्रद्धासे पौराणिक रीतिसे सब काम किया ।”

मैं—“अच्छा तो आपका तात्पर्य यह है कि अपने लिए प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छा छोड़ जाय ?”

मित्र—“हाँ । और मुझे आशा है कि ऐसा होनेपर उसके मित्र और सम्बन्धी उसकी इच्छा पूरी करेंगे ।”

मैं—“हाँ, करना तो चाहिए ।”

+ + + +

अगले दिन अपने मित्रके यहाँसे चलने लगा तो उन्होंने एक बन्द लिफाफा देते हुए कहा—“इस पत्रको डाकसे डालनेवाला था । अब मैं इसकी डिलेवरी अपने हाथसे करता हूँ । डाकमें कहीं गड़बड़ ही हो जाय ।”

आश्चर्यसे मैंने कहा—“मुझे पत्र देनेकी क्या जरूरत है ? जो बात हो कह न दीजिये ? और ऐसी बात हो ही क्या सकती है । लाइये अभी पढ़ लूँ ।”

मित्रने चिन्तापूर्ण गाम्भीर्यसे कहा—“नहीं । अभी पढ़नेकी आवश्यकता नहीं है । घरपर पढ़ लेना । यदि जबानी कहने की बात होती, तो कह दी जाती ।”

मैं—“पर आप तो इन बातोंसे मेरे कौतूहल और चिन्ताको उग्र कर रहे हैं। आप बच्चे थोड़े ही हैं। जैसे यहाँ पढ़ा, वैसे ही घरपर।”

वहाँसे हटते हुए वे बोले—“अच्छा नहीं मानते, तो पढ़लो।”

पत्र खोलकर पढ़ा तो मुझे कोई आश्चर्य न हुआ। उनकी मनोवृत्तिका पता तो मुझे था ही, और उनकी योजनाका आभास उनके हृदयग्राही वार्तालापसे हो गया था। पत्रमें लिखा था:—

“इस पत्रको मैं किसी आवेशमें नहीं, वरन् स्वस्थ और शान्त मनसे लिख रहा हूँ। अभी जवानी है और वह शायद आगामी बीस वर्ष तक और रहे; पर मैं मौतके नगाड़ोंकी धीमी ध्वनि ठीक उसी भाँति सुन रहा हूँ, जैसे वेगवती सरिताकी धारा मचलती और अठखेलियाँ खेलती यह महसूस करती है कि वह प्रतिकूल समुद्रकी ओरको बढ़ रही है, जहाँपर उसकी अन्तिम समाधि बनेगी।

“मैं चाहता हूँ, और यही मेरी वसीयत है, कि मेरे शरीरान्तके उपरान्त मेरे बच्चे—कुटुम्बियोंका मैं खयाल नहीं करता, और मेरे परम मित्र, जो मेरे लिए खास भाईके समान हैं, मेरे क्रिया-कर्ममें कुछ न करें। दो-चार गरीबोंको खिला दें। पौराणिक ढंगसे पिंड दें; पर दाहक्रियासे लगाकर तेरहवीं तक कुल वज्र दस रुपयेसे अधिक न हो। यदि मेरे बच्चों और मित्रोंके पास फ्राञ्चिल रुपया हो, तो उसको अज्ञान और सामाजिक रूढ़ियोंके दूर करनेमें लगावें।”

मेरे कहनेसे मेरे मित्रने—‘कुटुम्बियोंका मैं खयाल नहीं करता’—वाक्य निकाल दिया ।

मार्ग-भर मैं अपने प्रिय मित्रकी वेदना, दार्शनिक उड़ान और कर्तव्यपरायणताका विचार करता आया; अपने लिए तो मैं ‘फ़ानी’ के शब्दोंमें यही कहूँगा कि—

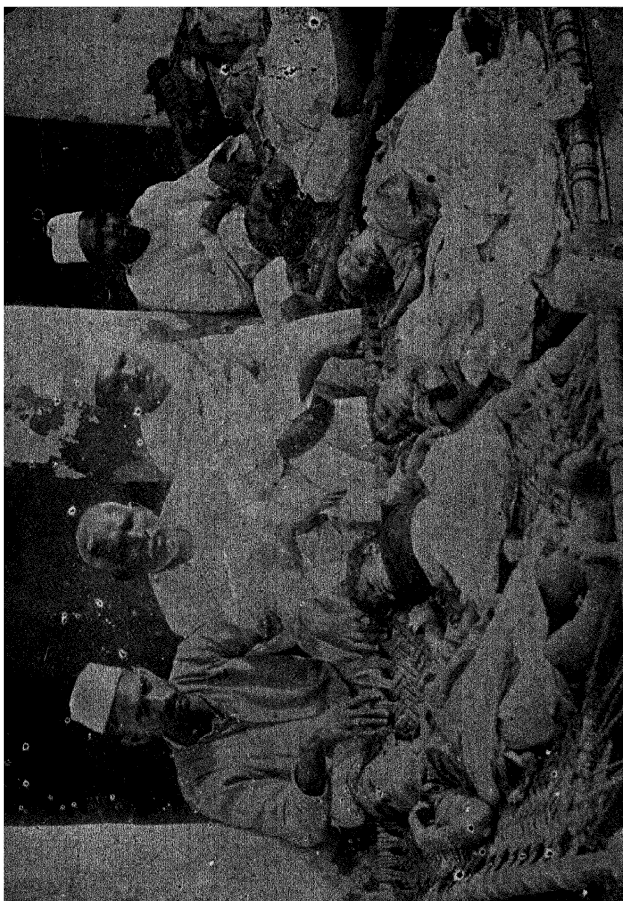
‘गमके टहोके कुछ हों बलासे, आके जगा तो जाते हैं ;

हम हैं मगर वह नींदके माते, जागते ही सो जाते हैं ।’

—————

फ़ीरोज़ाबादकी कालकोठरी





सन् १९३४ की १४ अप्रैल का प्रातःकाल । गुरुदेव—विश्वकवि
 रवीन्दनाथ ठाकुरके कलापूर्ण निवास स्थान 'उत्तरायण' में
 हिन्दी साहित्य सेवियोंकी एक छोटी टोली बैठी गुरुदेवकी अमर
 वाणी सुन रही थी। अधिकांश मित्र अगल-बगल, जहाँ
 स्थान मिला वहाँ, बैठे थे और मैं दो-तीन मित्रोंके साथ सौभाग्य
 से, गुरुदेव के सामने, दो गजकी दूरीपर बैठा था। साम्प्र-
 दायिकता-विषके विरुद्ध गुरुदेव अपनी भावनाओंको प्रकट
 कर रहे थे। सब लोग बूढ़े ऋषिकी अन्तर्वेदनाको ध्यान मग्न
 सुन रहे थे। गुरुदेवकी भव्याकृति, गौर वर्ण, वृद्धावस्था,
 आकर्षक श्वेत दाढ़ी-मूँछ, और बालोंने उन्हें देवदूत बना
 रक्खा था। अधिकांश लोग अपने कानोंको ही उनकी अमृत
 वाणी से पवित्र कर रहे थे और मैं हाथ कान और आँखोंसे
 गुरुदेवकी वाणीको समेट रहा था। अपने कैमरेकी क्लिक और
 कर्णरंध्रोंकी तत्परताके साथ मेरे खोजी नयन विश्वकविकी
 आकृतिका अध्ययन कर रहे थे। प्रत्येक भाव कविकी मुखा-

कृति पर अंकित होजाता था और देशव्यापी साम्प्रदायिकता-विषकी निन्दा करते समय उनके मुखमण्डलकी आभा कितनी विषाद युक्त होजाती थी !

‘उत्तरायण’ से निकलते हुए खयाल हुआ कि विश्वकविकी वेदना, काव्य निर्भरी द्वारा साम्प्रदायिक ज्वालाको शमन करनेमें सफल होगी ।

+ + + +

उसी तारीख और उसी समयपर, स्थान शान्तिनिकेतन नहीं, वरन आगरे जिलेका प्रसिद्ध नगर फीरोजाबाद और डाक्टर जीवाराम शर्माका मकान । पर यह डाक्टर जीवाराम शर्मा कौन हैं ? इन पंक्तियोंके लेखकके कोई सम्बन्धी ? हाँ, चचेरे भाई सम्बन्ध से और सगे छोटे भाई व्यवहारसे, इतने निकट सम्बन्धी कि सैकड़ों लोगोंको और खास मित्रों तकको यह साधारण-सा भेद नहीं मालूम था । पर इन व्यक्तिगत बातोंसे—भाईकी चर्चासे लोगौको कोई प्रयोजन ? है । प्रश्न भाईका नहीं है—व्यक्तिगत रोने-धोनेको प्रकाशमें लानेकी हमें आदत भी नहीं । सवाल है मानवताका और देशकी एक विकट समस्याका, जिसके कारण हमारी राष्ट्रीय आकाँक्षाओंकी नौका उस विषम समस्याके आवर्तमें डगमगा रही है ।

हाँ, तो डाक्टर जीवाराम शर्माका मकान । उस मकानको प्रभातकी किरणोंने उसी भौँति शोभित किया जिस प्रकार ‘उत्तरायण’ को । छतपर अपने छह वर्षीय पुत्र सुरेश, चार वर्षीया बालिका

सरला, दो वर्षीया एक बच्ची, दस वर्षीया भतीजी सावित्री और अपनी पत्नीके बीच जीवारामजी बैठे हैं। मकान किरायेका है। आँखका अस्पताल घरसे दूर पड़ता है और रोगियों की भरमार रहती है; इसलिए तिलक-भवनके निकट जीवारामने अपना निजी मकान बनवाया है। दस-पाँच दिनमें ही अपने निजी मकानमें जाना है। जीवारामजीकी पत्नीको गृह-प्रवेश-उत्सव की बड़ी लालसा है और इसीलिए वह अपने पतिसे उत्सवकी चर्चा करती है।

“तो अभीसे प्रबन्ध करोगे, तभी तो सब काम ठीक होगा।”

“अभी क्या जल्दी है? शहरमें प्रबन्ध करनेमें क्या देर लगती है।”

“लगती कैसे नहीं है? पहले तिथि निश्चय होजाय तो मैं गाँवसे अपनी जिठानियों और दौरानियों को बुलाऊँ! दादाजू (इन पंक्तियोंका लेखक) को खबर कर देना कि आएँ और जीजी (लेखककी पत्नी) को बुलाने इक्का भेजूँगी।”

“विमला और कमलाको लिबाने आगरे में जाऊँगा”— बालक सुरेशने बीचमें कहा।

माता पिता बालककी सरलता पर हँस पड़े और माताने दुलारसे अपने इकलौते बेटेको छातीसे लगा लिया और गोदीसे ही सुरेश फिर बोला—“बुआटिया (सरला) अच्छी नाएँ।” “हाँ तू बहुत अच्छा है। जायगा तू अपने बन्दूक वाले ताऊजीके……।”

कृति पर अंकित होजाता था और देशव्यापी साम्प्रदायिकता-विषकी निन्दा करते समय उनके मुखमण्डलकी आभा कितनी विषाद युक्त होजाती थी !

‘उत्तरायण’ से निकलते हुए खयाल हुआ कि विश्वकविकी वेदना, काव्य निर्भरी द्वारा साम्प्रदायिक ज्वालाको शमन करनेमें सफल होगी ।

+ + + +

उसी तारीख और उसी समयपर, स्थान शान्तिनिकेतन नहीं, वरन आगरे जिलेका प्रसिद्ध नगर फीरोजाबाद और डाक्टर जीवाराम शर्माका मकान । पर यह डाक्टर जीवाराम शर्मा कौन हैं ? इन पंक्तियोंके लेखकके कोई सम्बन्धी ? हाँ, चचेरे भाई सम्बन्ध से और सगे छोटे भाई व्यवहारसे, इतने निकट सम्बन्धी कि सैकड़ों लोगोंको और खास मित्रों तकको यह साधारण-सा भेद नहीं मालूम था । पर इन व्यक्तिगत बातोंसे—भाईकी चर्चासे लोगौको कोई प्रयोजन ? है । प्रश्न भाईका नहीं है—व्यक्तिगत रोने-धोनेको प्रकाशमें लानेकी हमें आदत भी नहीं । सवाल है मानवताका और देशकी एक विकट समस्याका, जिसके कारण हमारी राष्ट्रीय आकाँक्षाओंकी नौका उस विषम समस्याके आवर्तमें डगमगा रही है ।

हाँ, तो डाक्टर जीवाराम शर्माका मकान । उस मकानको प्रभातकी किरणोंने उसी भौँति शोभित किया जिस प्रकार ‘उत्तरायण’ को । छतपर अपने छह वर्षीय पुत्र सुरेश, चार वर्षीया बालिका

सरला, दो वर्षीया एक बच्ची, दस वर्षीया भतीजी सावित्री और अपनी पत्नीके बीच जीवाराजजी बैठे हैं। मकान किरायेका है। आँखका अस्पताल घरसे दूर पड़ता है और रोगियों की भरमार रहती है; इसलिए तिलक-भवनके निकट जीवाराजने अपना निजी मकान बनवाया है। दस-पाँच दिनमें ही अपने निजी मकानमें जाना है। जीवाराजजीकी पत्नीको गृह-प्रवेश-उत्सव की बड़ी लालसा है और इसीलिए वह अपने पतिसे उत्सवकी चर्चा करती है।

“तो अभीसे प्रबन्ध करोगे, तभी तो सब काम ठीक होगा।”

“अभी क्या जल्दी है? शहरमें प्रबन्ध करनेमें क्या देर लगती है।”

“लगती कैसे नहीं है? पहले तिथि निश्चय होजाय तो मैं गाँवसे अपनी जिठानियों और दौरानियों को बुलाऊँ! दादाजू (इन पंक्तियोंका लेखक) को खबर कर देना कि आएँ और जीजी (लेखककी पत्नी) को बुलाने इच्छा भेजूँगी।”

“विमला और कमलाको लिवाने आगरे मैं जाऊँगा”— बालक सुरेशने बीचमें कहा।

माता पिता बालककी सरलता पर हँस पड़े और माताने दुलारसे अपने इकलौते बेटेको छातीसे लगा लिया और गोदीसे ही सुरेश फिर बोला—“बुआटिया (सरला) अच्छी नाएँ।” “हाँ तू बहुत अच्छा है। जायगा तू अपने बन्दूक वाले ताऊजीके……।”

“डाक्टर साहब ! डाक्टर साहब !! जल्दी नीचे आइये । मेरे भाईका दर्दसे बेहाल है”—की ध्वनिने जीवारामजीके वार्तालापके सिलसिलेको तोड़ दिया और वे बालक सुरेशका यह उत्तर भी न सुन सके कि “चाचा मोइ (मुझे) अवेई (अभी) पठइदेउ ।

+ + + +

नीचे आकर अपने कमरेमें जीवारामजीने रोगियोंको देखना आरम्भ किया । रोगियोंका ताँता लगा ।

मरीज आते और दवा लेकर चले जाते और एक बुढ़िया मुग्ध होकर कहती गई कि बेटा दूधन न्हाओ पूतन फलो । क्या यह आशीर्वाद था या काल कूट व्यंग्य ? इसी बीच छतसे सुरेश और सरला उतरे । जीवारामजीसे कहा—“चाचा हम तमाशा देखेंगे ।” कम्पाउण्डर ओषधि बनानेमें व्यस्त था । बच्चे खेल रहे थे और घरके भीतर जीवारामजीकी पत्नीने स्नान करके अपनी माँगमें सिंदूर भरा । डिवियाका सिंदूर समाप्तिपर था, और सिंदूरके लिये बाज़ार आदमी गया । पर बाहरी विधिकी रचना और सिंदूर वालीकी भावना !

आगे क्या हुआ ? आगे.....उफ़ !

क्या आप माता-पिता हैं ? भाई-बहन हैं ? और कुछ न सही तो क्या आप मनुष्य हैं ? आपके दिल है और दिलमें सहृदयता और मानवता का अंश भी है ? तनक कल्पना कीजिए ! हमारी कलम तो चलती नहीं है । कलेजा मुँहको आता है,

हूक उठती है और आँखों से सोता बह चलता है। क्या लिखें ? लिखनेको पत्थरका कलेजा चाहिए और जैसा कुछ दिल है उसके टूक-टूक होगए हैं। पर लिखनेको बाध्य होना पड़ रहा है। निजी सम्बन्धसे नहीं। तो फिर किस खयालसे लिखनेकी चेष्टा की जा रही है और कौन भावना इसमें प्रेरक है ? बस मानवीय भावना और कुछ नहीं।

अच्छा तो जीवारामजी और उनकी पत्नीके स्थानमें होनेकी कल्पना कीजिए। बच्चे खड़े हैं। तमाशेकां मचलते हैं। कम्पा-उण्डर ओषधिकी तैयारीमें व्यस्त है। रोगी कराह रहे हैं। छतपर जीवारामजीका भतीजा विश्वम्भर, एक नौकर और जीवारामजी की पत्नी हैं। माँगमें सिंदूर भरे वह भविष्यका स्वप्न देख रही है कि उसका बेटा सुरेश बड़ा होकर बापसे अधिक नाम करेगा। ठीक उसी समय—तनक कल्पना कीजिए परिस्थितकी—बाज़ारसे कम्पोत्पादक शब्द आता है—“अली ! अली !! अल्लाहो अकबर ! अल्लाहो अकबर !!” सब कान उधर हुए और सावधानीके खयाल से जीवारामजीने मकानके किवाड़ बन्द कर लिए और इतने ही में उन्मत्त मुसलमान—मनुष्यता और सहृदयताहीन वर्बर ताजिएदार—अपनी माताओंकी कोखको कलंकित करनेवाले गुण्डे, पागल कुत्तोंकी भाँति मकानपर दौड़ पड़े। अनश्र वज्रपात-सा हुआ, विहारके भूकम्पसे भी अधिक दिल दहलानेवाला कायरतापूर्ण आक्रमण हुआ—उस मकानपर जिसमें नगरका अत्यन्त लोकप्रिय, प्रभावशाली और समाज-सेवी डाक्टर रहता था।

डाकूर जीवारामजीके पास फीरोजाबादके अधिकांश मुसलमान इलाजको आते थे, और स्वास्थ्यलाभ करने पर हमने बीसोंको कहते सुना—“खुदाकी बरकतसे ऐसा डाकूर हमें मिला है।” ऐसे डाकूरको जो साम्प्रदायिक भावसे कोसों दूर हो—जो अपने नगरकी चुंगीके चक्करोंमें न हो—किसी मुसलमानी जुलूससे क्या डर ? हाँ, वह कॉंग्रेसका हामी था और अपनी तहसीलका प्रमुख कार्यकर्ता ।

यह तो कोई दोष न था । और यदि उसे कोई आशंका होती, तो सतर्क न रहता ! पर पागल मुसलमानोंकी भीड़ घर-पर चढ़ आई । अस्पताल और बैठनेके कमरेपर धावा बोल दिया—मारो काफ़िरको ! उस डाकूरके मकानपर चढ़ाई करदी जिसने मुसलमानोंको अमृत-पान कराया था और जिसकी लोकसेवाको मुसलमान ‘कुफ़्र’ के नामसे पुकार रहे थे । बाल-बच्चेदार पाठक और वे जिनमें मानवी उपाति लुप्त नहीं हांगई है, तनक कल्पना करें । घबराकर डाकूर जीवाराम सुरेशका छानीसे लगाकर अन्य बच्चों और रोगियोंके साथ भीतरका भागते हैं । सुरेश रोने लगता है । कम्पाउण्डर, कहार और रंगी हक्के-बक्के खरगोशकी भाँति जीवारामजीके साथ जाते हैं और बाहर मुहम्मद सले अल्लाहके अनुयायी खूनी कुत्तोंकी भाँति भीतर आनेकी चेष्टा करते हैं । डाकूरके भीतर घुसते ही प्रातःकालको माँग भरन वाली पत्नी, बच्चीको छानीसे चिपटाए, भयभीत हिरनीकी भाँति छतसे उसके पास भागी आती है, जिसके बूते

वह माँग भरती है। विश्वम्भर और रसोइया मिर्हीलाल ऊपर छतपर ही रहना पसन्द करते हैं, पर जीवारामजीकी एक ही धमकीमें वे भी नीचे उतर आते हैं। जीनेके किवाड़ भीतरसे बन्द कर दिए जाते हैं और सबके सब एक कमरेमें—जिसमें खिड़कियाँ नहीं और जिसमें वायु जानेका मार्ग सहनमें होकर ही है, चले जाते हैं। महनके ऊपर मजबूत जंगला है—छतसे लगा हुआ और उसीपर कपड़े और चारपाइयाँ रखी हैं।

जीवारामजीने खयाल किया कि उन्मत्त मुसलमान हू-हूक करके चले जायँगे। और कुछ ऊधमपर भी आमादा हुए तो तीन-चार जोड़ी किवाड़ोंको तोड़कर आना आसान काम नहीं है। किन्तु मजबूत थे उस घरके किवाड़ ! घण्टों कुल्हाड़ियाँ चलतीं तब भी उनका फटना कठिन था। यदि जीवारामजीको तनक भी आशंका होती, तो छतपर चढ़ जाते और छह-सात जवान तो वे थे ही और छतकी दीवारसे तीन आदमी सैकड़ोंका मुकाबला कर सकते थे। मुँड़गारीपर खड़े होकर छतपर चढ़ने वालेको मार गिराते और अपनी रक्षा कर लेते, पर वहाँ तो किसी दुर्घटनाकी आशंका ही नहीं थी।

एक तंग कोठरीमें तरह प्राणी बन्द हैं और चारों ओर कुह-राम मचा हुआ है। उन्मत्त मुसलमान भीतर बन्द लोगोंको गाली देते हैं और भाग-भागकर पेट्रोल और मिर्चका तेल लाते हैं। पेट्रोल छिड़ककर और सींकचोंसे बैठकमें भीतर पेट्रोल फेंक कर आग लगा देते हैं। भीतर बालिकाएँ सहमी-सिकुड़ी बैठी हैं।

दूध पीती बच्ची रोती है। बन्दूकवाले ताऊजीके पास जाने वाला इच्छुक सुरेश माँ-बापके बीच खड़ा काँप रहा है। ज्वाला भवकी भव-भव-भव ! गुंडे चिल्लाए, या अली, या अली और भीतर बन्द बच्चे चीखे-हाय चाचा, हाय जिजी (बच्चे अपनी माँको जिजी कहते थे) और थोड़ी देर बाद ही बाहरसे मुसल-मानोंका एक दल सीढ़ी लगाकर छतपर चढ़ आया। जीनेके किवाड़ बन्द थे। गाली-गलौजसे सन्दूक-से कमरेमें बन्द प्राणियोंका सत्कार किया गया। क्या वे बलि-पशु थे ? स्वयं सोचिए न ? पर थे वे निर्दोष, निहत्थे और निराश्रय ! छतके जंगलेपर कपड़े, और पलंग थे। पेट्रोल डालकर आग लगा दी। आग सुलगी नहीं—एकदम भटवराने लगी ऊपरसे। और बाहर किपाड़ोंकी आगने जोर मारा। जीनेमें रखी लकड़ियोंमें आग पुई। चारों ओरसे वह बढ़ी और तीनों ओरकी आगका संगम हुआ। ओषधिके कमरे, बैठककी आलमारियों और किताबोंके जलाने और अड़ाम-धड़ाम, धू-धू, चट-चटख, भव-भवसे मकानकी चिता जलने लगी और उधर कमरेके भीतर बन्द प्राणी तड़पड़ाये। जीवारामजीने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि भगवान् रक्षा करो। पर भगवान् तो शायद वहाँ था नहीं। वहाँ तो दोऊखी कुत्तोंका बोल वाला था। दम घुटा। बच्चे चिल्लाए—चाचा, भैया, जिजी, हाय ! अरे ! आगकी ज्वाला अनगिनत जीभोंसे कमरेकी ओर लपकी पर भीतर न जा सकी। हाँ, उसका दूत धुँआँ गहरे बादलके रूपमें कमरेमें बढ़ा। हाथों-

हाथ दिखाई न पड़ता था। सुरेश चीखा, चाचा ! सरला पुकारी, चाची मरी। नाकोंमें बजाय आक्सीजनके धुआँ धुसा, दम दूटने लगे। मुँह खुले। आँखें फटीं। धुआँकी सत्ताने और जोर मारा। विश्वम्भर भड़भड़ाकर बाहर निकला। सहनकी आगके करीब पानीकी टंका भरी थी। बेचारा झुलसा पर हिम्मत बाँधकर तीन-चार बाल्टी पानी उसने फेंका और चिल्लाया कि चाचा आगमें होकर ही भागो। मुसलमान इस बीच छतसे लूट-लाटकर भाग गए थे। पर ऊपर कौन जाता ? जीनेके मार्गमें भी आग जल रही थी। विश्वम्भर फिर चिल्लाया। जीवारासजी कमरेसे बाहर हुए; पर आगकी लपटों ने उन्हें न बढ़ने दिया और सुरेशकी कराह आई चाचा ! आगसे खदेड़े जाने और बच्चेकी आह सुननेसे डाक्टर कमरेमें फिर कैद हो गए। विश्वम्भर दूरी की भिगोकर जीनेमें होकर भागा। मुँह और हाथ-पैर दुरी तरह जले, जल जलाकर वह छत परसे दूसरी छत पर कूदा। उधर कमरेके भीतर धुआँके घोर अंधकार में माँ, बाप, बच्चे, कम्पाउण्डर और गंगी इधर-उधर तड़पकर गिरे। अर्ध मूर्च्छामें जीवारासने अपने बच्चे सम्हालने की कोशिश की। वे हाथ जिन्होंने हज़ारों को शफा दी, अपने बच्चोंको शफा न दे सके। “आहरे, अरे कोई बचाना।” फिर क्षीण शब्द अवरुद्ध कण्ठसे ‘चाचा’ और फिर निस्तब्धता।

+

+

+

+

दो घंटे बाद लोग बचाने आये तो उस कालकोठरीसे तीन मूर्च्छित प्राणी निकले । बालिका तो थोड़ी देर बाद चल बसी । डाक्टर प्यारेलाल और डाक्टर भवानीशंकरके उद्योगसे अभागिनी पत्नी विधवा के रूपमें बची और रसोइया भी बचगया । कौन जाने विधवा पत्नी और रसोइया की भाँति जीवागमजी में भी जान रही हो । लोग कहते हैं साँस थी ।

उस समय सशस्त्र पुलिस थी । हाकिम परगना था । इरोसा था । सर्किल इन्स्पेक्टर था और न्याय तथा रक्षाका दम भरने वाली ब्रिटिश सरकारका भी अन्न न हुआ था । आग क्यों नहीं बुझाई गई ? आग लगनेवाले आतताइयोंको क्यों नहीं तितर-बितर कर दिया गया ? डाक्टर जीवागमजीका मकान ही क्यों विशेष रूपसे चुना गया—इन बातोंपर हमें कुछ नहीं लिखना ।

× × × ×

दिलमें तूफान उठा हुआ है । दिमाग काबूमें नहीं है । अभागिनी विधवा—जीवारामजीकी पत्नी और पिछले तीस वर्षकी स्मृतियों का खयाल करके हृदय फटा जाता है । बीसों बार आँसू बहाये हैं । बाहरे बन्दूक वाले ताऊ ! गोद खिलाया सुरेश, थपकियाँ दी हुई सरला और हँमाने वाली सावित्री, विधवा बहनके देवर गंगाविष्णु, कम्पाउण्डर और वे रोगी उस कालकोठरी में दम घुट कर समाप्त हो गये । कलकत्ते की कालकोठरी तो हाल बैलके दिमागकी कल्पना थी सर्वथा भूठी, मन गढ़न्त । और उस गपोड़गाथा की कोठरी में आग न लगाई गई थी ।

पर फ़ीरोज़ाबादमें जो घटना घटी, निर्दोषोंकी दम घोटकर हत्याकी गई, उसकी जघन्यता का वर्णन कोई कैसे करे ।

हमारे दिलमें तो हूक उठती है । स्वर्गीय भाईकी विधवाको कैसे समझाया जाय । उसकी एक बच्ची विमला बची है, जो आगरे थी । विमलाको लेकर सुहागभरी वह फ़ीरोज़ाबाद गई थी, और आज अपना सुहाग लुटाकर, बच्चोंको साम्प्रदायिकता की अग्निमें जलाकर, फ़ीरोज़ाबादको सब कुछ अर्पण करके, सधवासे विधवा होकर वड़ गाँव लौटी है ।

क्या निर्दोष बच्चोंके बध और विधवाकी आहोंमें कुछ शक्ति है ? क्या वे पुर असर हो सकती हैं और पुर असर होकर विघ्न-बाधाओंको चीरती वे क्या हमें उस आदर्श पर लेजा सकती हैं जहाँसे हम सभ्यताका पहला पाठ, मानवताकी अ आ, इ ई, सोख सकें--आदमीको आदमी समझें ? हमें तरस आता है मुस्लिम युवकोंपर ! क्या वे इतने कायर हैं ? क्या वे इतने पतित हो गए हैं कि उन्हें अपने देश और मानवताका कुछ खयाल नहीं है ?

अपनी निजी हानिके बारेमें हम क्या लिखें ? समाचार-पत्रोंमें अपनी वेदना का प्रदर्शन करना अशिष्टता है । हाँ, देशकी खातिर हम यहाँ तक कहनेको तैयार हैं कि यह मुहर्रम और रामलीला ढकोसले हैं । मन्दिर और मसजिद गायत्री और कलमा सब फ़जूल हैं जब उनसे मानवताकी रक्षा नहीं होती । वे तो अब अमीरों और भगड़ालू लोगोंके लिए

अखाड़े बन गये हैं । वहाँपर साम्प्रदायिकताके कीटाणु पनपते हैं ।

x

x

x

x

हिंदू, मुसलमान और नौकरशाही तनक हमें बताएँ—
हमें न बताएँ तो बिलखती विधवाको, उसके बिछुड़े पति और
बिलखकर प्राण देने वाले बालकों की खातिर ही बताएँ कि
फ़ीरोज़ाबादके मुसलमानोंने इतने निर्दोष मानवी पुतलोंके खूनसे
अपने हाथ क्या रंगे हैं ?

—————

अपराधी



.....नामक ग्राममें ब्राह्मणोंके दो कुटुम्ब रहते थे । एक ही पितामहकी सब सन्तान थे । पर, जैसे एक ही वृक्षकी शाखाएँ पूर्व और पश्चिमकी ओर फैल जाती हैं, उसी प्रकार दोनों कुटुम्बोंकी प्रकृति भी परस्पर विरोधिनी दिशामें थीं । एक दूसरेको देख नहीं सकते थे । भगड़ेका मूल कारण था एक पाँच बीघेका छोटा-सा खेत जो पंचायतके बटवारेसे मोहनलाल और उसके भाइयोंको मिला था । पर पृथ्वीपाल और उसके भाई लाठीके बलसे उस खेतको हथियाना चाहते थे ।

मोहनलाल पाँच भाई थे । अपने भाइयोंमें वह सबसे छोटा था, परन्तु उसका स्वभाव बड़ा गम्भीर था । बोलता कम था । चाल अकृत्रिम थी । चेहरे-मुहरेसे वह कुशाग्रबुद्धि प्रतीत होता था, और उसका विपत्ती पृथ्वीपाल गाँव भरमें मार-तेखों प्रसिद्ध था । अनायास ही वह साधारण-सी बातपर लड़ पड़ता था । गालीगलौज तो उसका तकियाकलाम था । बक्की वह इतना था कि यदि कोई उसके पास न होता तो गाय-भैंस

और खूँटा-पगहासे बातें किया करता था । पृथ्वीपाल भी पाँच भाई थे, पर पृथ्वीपाल सबसे बड़ा था । लोग उसे अरहरका डूँड़ समझते थे, जिसमें कपड़े उलझकर सदैव फट जाते हैं । सबसे बुरी बात उसमें यह थी कि जब कभी मोहनलाल या उसके भाई उधर होकर निकलते तब घोड़े और कुत्तेको संकेत करके व्यंग्य-वचन बोला करता । मोहनलाल या अपने किसी विपत्तीको उधर आते देखता तो पृथ्वीपाल अपने कुत्तेकी ओर संकेत कर कहना आरम्भ कर देता—“अब धीरे-धीरे क्या चलता है ? भंगीसे तेरे नाक-कान कटवा कर तेरे मुँहमें न थुकवाऊँ तो मेरा नाम पृथ्वीपाल नहीं ।” मोहनलाल गर्दन नीचे किये निकल जाता । उसने उधरका आना-जाना भी छोड़ दिया था; पर, बढ़ईके घरके लिए उधर होकर ही रास्ता था ।

+ + + +

गुण्डे चाहे वे शिक्षित हों अथवा अशिक्षित, कमजोरोपर अपनी शक्ति दिखाते हैं । पृथ्वीपाल भी गुण्डा था । किसी किसानका खेत कटवा लेना, चमारोंके जूते लगवाना, कहारोंसे बेगारमें काम कराना और पुलिसकी ठोड़ी चूमना, निर्बलोपर चढ़ बैठना, और जरबदस्तोंके सामने दब जाना, उनकी खुशामद करना, यही उसका कार्यक्रम था । गाँववाले कहा करते थे, ‘अरे भैया बासूँ कोई का कए, बुतो सूदो (सीधा) दरोगाजीके ढिंगा (पास) चलौ जातु ए । दरोगाजी चाईकी मान्त (मानते) ए ।’ ऐसे आदमीसे उलझना साधारण किसानका काम न था ।

अत्याचार सहना, और तिरस्कृत होना, दबाए जाना और दबते रहना—ये बातें तो गाँव वालोंके लिए ऐसी होगई हैं, जैसे होली और दिवालीका आना और चला जाना। ये तो उन रस्मोंके समान हैं जो अदा करनी ही पड़ती हैं, पर, मोहनलालके हृदयमें अन्दर-ही-अन्दर ज्वालामुखी धधक रहा था। अभी वह मन मारे बैठा था। उसके भाइयोंने भी शान्ति धारण करनेके लिए उससे आग्रह किया था। 'तू अकेला क्या कर लेगा ? और हम सब मिल कर ही पृथ्वीपाल और उसके भाइयोंका क्या कर सकते हैं ? उनके पास रुपया है। लाठीका जोर है। अपना कोई हितू नहीं। उस खेतको जाने भी दो। जन्म भरका टण्टा मिटेगा। खेत लेकर अपना भाग्य तो कोई छीन न लेगा।' 'यह कैसे हो सकता है कि हम अपना खेत उसे जोतने दें। पंचोंने उसे हमें दिया है। हम ही उसे जोतेंगे। पृथ्वीपालके पास पुलिस और लाठीका जोर है, तो हमें न्याय और ईश्वरका भरोसा है।'

ऐसी बातें मोहनलाल और उसके भाइयोंमें महीनेमे दो-चार बार हो जातीं।

+

+

+

+

पंचायत को हुए आठ-नौ महीने होने आये, और जाड़े के पश्चात् गर्मी, और गर्मीकी भयंकर आँधी और लूके उपरान्त आधा आषाढ़ आ गया। गाँव वालोंने अपने कच्चे और दूटे-फूटे मकानोंकी मरम्मत भी कर ली थी। छान भाँपड़ी भी लोगोंने

डाल ली थीं । ग्रामीण स्त्रियोंने घरोंके कोनोंमें कण्डोंके ढेर लगा लिये थे जिससे बरसातमें ईंधनका कष्ट न हो । बारिशके लिए प्रार्थनाएँ करना और मित्रतेँ मनाना आरम्भ हो गया । सब शकुन अच्छे थे । जेठ भी खूब तपा था । गंगादशहराको बूँदा-बाँदो भी हुई थी, इसलिए सबका खयाल था कि बारिश खूब होगी । किसानोंके लिए उचित समयपर बारिश हो जाना मानों अन्नका बरसना है ।

अन्तमें, आषाढ़में २० दिन जानेके उपरान्त बादल घिरा और किसानोंके भाग्यसे वृष्टि अच्छी हुई । दूसरे ही दिन किसान लोग फावड़े, हल और बैल लेकर अपने खेतोंपर पहुँचे । मोहनलाल और उसके भाई भी उसी पाँच बीघेपर पहुँचे, जिसको पंचोंने उन्हें दिलवाया था । मोहनलाल हलपर था और उसके शेष चार भाई काँटे बीनने और मेंड़ डालनेमें लगे हुए थे । अभी आध बीघा खेत भी न जुत पाया था कि पृथ्वी-पाल और उसके भाई कन्धोंपर लट्टु रखे आते हुए दूरसे ही दिखाई पड़े । वे विवादग्रस्त पाँच बीघेकी ओर ही आ रहे थे और उनकी चाल किसी भयङ्कर भविष्यकी सूचक थी । इसलिए मोहनलाल और उसके भाइयोंने काम बन्द कर दिया और वे तम्बाकू पीनेके बहाने एकत्र होकर बैठ गये । मोहनलालने शीघ्र ही खेतकी मेंड़ वाले बबूलसे दो शाखाएँ काटलीं । वे पाँचों अपने साथ दो ही लाठी लाये थे । वे कौजदारीकी तैयारी करके न आये थे । कौजदारीमें वे अपने विपक्षियोंसे कई बार हार

भी चुके थे। पर, सामने आनेवाली बलासे बचनेका कुछ तो उपाय करना ही पड़ता है। बावले कुत्तेसे बचनेके लिए, हाथमें लकड़ी पकड़नी ही पड़ती है, चाहे फिर रक्षा हो या न हो।

मोहनलाल अपने भाइयोंके पास आकर बैठा ही था कि पृथ्वीपाल और उसके भाई सौ-सवासौ कदमपर आ पहुँचे और गाली देते हुए उन्होंने खेतमें बैठे अपने विपक्षियोंको आह्वान किया। “देखें किसकी छातीपर बाल हैं जो हमारे जीते जी इस खेतको जोते। ओ मोहनाके... देखें तूने अपनी माँका कितना दूध पिया है। आ, जरा मरदोंका सामना कर। ला उन अपने हिमायती पञ्चोंको।” कह कर उसने एक लाठी बैलोंके मारी। बैल पगहा तुड़ा कर भाग गये। तब पृथ्वीपाल, उसके भाई और उसके तीन साथियोंने,—आठ आदमियोंने—मोहनलाल और उसके भाइयोंपर आक्रमण किया।

खटाखट और तड़ातड़ लाठियाँ चलने लगीं। दस मिनटमें ही मोहनलालके भाई धराशायी हो गये। लाठियाँ उनके पास न थीं। पर, आत्म-रक्षाके लिए निहत्था आदमी तक सैकड़ोंका सामना करता है। शिवाजीने औरंगजेबके दरबारमें, खिड़कीमें होकर मार्ग होनेके कारण, पहले अपने पैर दरबारकी ओर किये थे, शीश नहीं झुकाया। चींटी भी दबनेसे काटती है। फिर मोहनलाल और उसके भाई कायर न थे। लड़े और घायल होकर गिर गये। पर, मोहनलाल और पृथ्वीपालकी लाठी चल रही थी। मोहनलालने लड़ते-लड़ते पृथ्वीपालका वार बचा

कर उसके घुटनेमें एक वार इस फुर्तीसे किया कि पृथ्वीपालके हाथसे लाठी गिर गई और वह चक्कर खाकर गिर पड़ा। पर, इतने ही में उसके साथियोंने मोहनलालकी खोपड़ीपर वार किया। एक को तो वह बचा गया पर दूसरी लाठी उसके माथे-पर बैठी और वह बेहोश होकर गिर गया।

+ + + +

इस दुर्घटनाके दूसरे दिन अस्पतालमें छह आदमी दाखिल किये गये। उनमेंसे एक तो आनेके एक घण्टे उपरान्त मर गया। वह मोहनलालका बड़ा भाई था। मोहनलालके भी गहरी चोट थी। उसके सत्तर टाँके लगे थे। और वह तीन महीनेतक अस्पतालमें रहा। पृथ्वीपाल एक महीने बाद अस्पतालसे अलग होगया। सब आदमी पुलिसकी हिरासतमें ले लिए गये। और सरकारकी ओरसे पृथ्वीपाल और उसके भाइयोंपर मुकदमा चला।

पृथ्वीपालको पुलिसपर बड़ा भरोसा था। पुलिसने उसका साथ भी दिया। कानिस्टेबलोंने गाँवमें जा-जाकर लोगोंको धमकाया कि जो कोई पृथ्वीपाल और उसके भाईके विरुद्ध गवाही देगा उसकी खैर नहीं, पुलिसवाले उसको किसी न किसी अंटेपर रखके बड़े घरकी हवा खिलायेंगे। कम से कम दफा ११० में तो फाँसा ही जायगा। पृथ्वीपाल सरकार और पुलिसका खैरखवाह है और मोहनलाल बड़ा सरकश। बस गाँवमें रौब जम गया।

+ + + +

पृथ्वीपाल और उसके भाइयोंपर मजिस्ट्रेटके यहाँ मुकदमा चला और मजिस्ट्रेटने उन्हें सेशन सुपुर्द कर दिया । सेशनमें पृथ्वीपालको प्राण-दण्डकी और उसके तीन भाइयोंको काले पानी की सजा हुई । शेष सब आदमी बरी कर दिए गये ।

+ + + +

कानूनी दाँव-पेंच बड़े विकट होते हैं । यद्यपि पुलिसको मुँहकी खानी पड़ी, तो भी पृथ्वीपालके यार-दोस्तोंने हाईकोर्टमें अपील की । अन्तिम बाज़ी लगवा ही दी । और एक हजार रुपए रोज़पर एक बढ़िया वकील किया । अपील हुई और अभियुक्तों के वकीलने बड़ी करारी बहस की । जजोंने सबूतको सन्देहात्मक पाया । घटनास्थलका कोई गवाह था ही नहीं । कानूनी वाग्जालकी तर्कके दाँव-पेंचकी विजय हुई ।

+ + + +

पृथ्वीपाल और उसके भाई हाईकोर्टसे छूटकर सीधे गाँवको आये, और मूछोंपर ताव देते हुए मोहनलालके मकानके पास होकर निकले और मोहन ही से उन्होंने कहा—“ले मोहना हम साफ़ बच आये और तेरी छातीपर फिर दाल दलेंगे । कुत्तेकी मौत तुझे न मारा तो मेरा नाम पृथ्वीपाल नहीं ।” यह जानकर कि हाईकोर्टसे उसके शत्रु—उसके भाईके अधिक—साफ़ छूट आये, मोहनलाल हक्का-बक्का रह गया । पर क्या करता ? दिल मसोस कर रह गया । हाँ, इधर कुछ दिनोंसे उसमें कुछ पागलपन-सा आ गया था । वास्तवमें वह पागल नहीं हुआ

था, उसके हृदयमें धधकने वाले ज्वालामुखीकी लपटोंने विकराल रूप धारण कर लिया था ।

+ + + +

एक बार फिर आषाढ़ आया । किसानोंके लिए वह आनन्ददायी, पर मोहनलालके लिए दारुण दुखदायी था । उसने वह पाँच बीघा खेत नहीं जोता । इसलिए नहीं कि वह शत्रुओंसे डरता था, वरन् इसलिए कि उसके भाइयोंने उसे खेत न जोतनेको बाध्य कर दिया । पृथ्वी-पालने भी वह खेत नहीं जोता । आधा सावन भी आ पहुँचा । हर साल सावनमें गाँवमें आल्हा हुआ करती थी । इस वर्ष भी आल्हा-गान हुआ । हाँ पिछले साल तो फौजदारीके कारण आल्हा गान नहीं हुआ था । इस वर्षकी धूमधामने पिछले वर्षकी कमी पूरी कर दी ।

गाँवके ठाकुरसाहबकी चौपालपर सायंकालको भीड़ लगी हुई थी । आस-पासके गाँवोंके आदमी भी उपस्थित थे । आल्हा गाने वालेने हाथमें तलवार लेकर प्रसंगमें कहा:—

‘जाके चैरी सम्मुख बैठे, वाके जीवनको धिक्कार ।’

ढोलरुवालेने धिक्कारपर ठेका लिया और पृथ्वीपालने उच्चर कर सीधे हाथसे मूँछोंपर ताव दिया और मोहनलालकी आंर घूर कर देखा ।

सहनशीलताकी हद हो चुकी थी । अपमानकी सीमाका उल्लंघन हो चुका था । मोहनलालके हृदयमें प्रतिहिंसा पूर्ण

रूपसे जाग्रत हो गई। संकोच और मोहके बाँध टूट गये। मोहनलालके हृदयमें बात लग गई। वह वहाँसे उठा और बिना इधर-उधर देखे हुए न मालूम कहाँ चला गया। उसके भाइयोंने थानेमें रिपोर्ट भी की। रिपोर्ट तो लिख ली गई पर साथमें उन पर यह दुत्कार भी पड़ी कि मोहनलाल कहीं चोरीको गया होगा।

+ + + +

ठीक छह महीने बाद सायंकालको गोधूलीके समय जब पृथ्वीपाल चारा काट रहा था, एक भयानक आकृति वाले युवकने, जिमकी दाढ़ी-मूँछ बड़ी हुई थीं और जिसकी आँखोंसे ज्वाला निकल रही थी दुनाली बन्दूक पृथ्वीपालके सामने करके कहा:—

‘जाके बैरी सम्मुख बैठे, बाके जीवनको धिक्कार।’

इसके बाद धौंय-धौंय और समाप्ति। पृथ्वीपालकी लोथ वहीं की वहीं रह गयी और चारा रक्त-रंजित होगया। गोलीकी आवाज सुनकर आदमी इकट्ठे होगये। पर खूनीके पास किसी को आनेका साहस न होता था। उमने उच्च स्वरसे कहा—“भाइयो, मैं मोहनलाल हूँ। यदि हाईकोर्टसे न्याय नहीं हुआ, तो मैंने स्वयं न्याय कर दिया। अब मेरे जीवनको धिक्कार नहीं है। पर प्रयत्न मै यह करूँगा कि इस रातस पृथ्वीपालके सब भाइयोंका नाश कर दूँ। मैं तो मरूँगा ही, पर संसारको बता जाऊँगा कि अपमान और अन्याय का क्या फल होता है।” यह कइकर और सबसे राम-राम करके अन्धकार में वह कहीं चला गया। किसी

की यह हिम्मत न हुई कि लड़कर उसे पकड़ले। सब लोग हक्के-बक्के-से रह गये।

पृथ्वीपालकी लाश थाने ले जाई गई और मोहनलालकी गिरफ्तारीके लिए एक हजारका इनाम रखा गया। पर कहीं उसका पता न चला। हाँ छह-सात मासके उपरान्त पुलिसको यह समाचार मिला कि मोहनलाल और उसके एक साथी ठाकुर ने, जिसका वारंट पहलेही से था एक महीनेके भीतर छह-सात डाके डाले और वे हजारों का माल लूट ले गये। मोहनलाल की गिरफ्तारीके लिए डेढ़ हजार का इनाम कर दिया गया। पर वह हाथ न आया।

+ + + +

विस्मृति मानव-जीवन के लिए एक आवश्यक वस्तु है। यदि हम भूलें नहीं तो हमारा जीवन एक प्रकारसे असंभव हो जाय। अपने प्रियजनोंके विरहके घावको भरने वाली विस्मृति ही है। पृथ्वीपालके भाई भी आखिर पाँच तत्वके ही तो बने थे। समय बीतनेपर वे अपने भाईका दुखड़ा भूल गये। वही आषाढ़ का समय था। बैल लेनेके लिए पासकी एक हाटमें वे गये। लौटनेमें अँधेरा होगया, उनका मार्ग ढाकके एक जंगलमें होकर था। चारों भाई बाजारकी बातें करते जाते थे कि इतनेमें ही दो सशस्त्र आदमियोंने उनका मार्ग रोक लिया और उनमेंसे एकने कहा:—

“जाके बैरी सम्मुख बैठें, ताके जीवन को धिकार।”

धौं-धौं दो फायर हुए और दो लाशें वहीं धम से गिर गईं। बचे हुए दो भाई भागे। परन्तु इस समय तो मनुष्यके रूपमें दो बाघ—मोहनलाल और उसका मित्र—उनका पीछा कर रहे थे। वे भला कहीं बच सकते थे? दस-वीं न कदम पर ही ठोकर खाकर एक तो गिरा और दूसरे से एक फायर और हुआ! वह वहीं ठंडा हो गया। दूसरा सौ गज पर जाकर उनके हाथ लग गया। चार हत्या करके मोहनलालने बन्दूक रखके प्रार्थना की—‘भगवन, मेरी मुराद पूरी होगयी। अब चाहे मेरा कुछ भी हो, मुझे अब शान्ति है। संसारमें अब मेरा कोई वैरी नहीं।’

+ + + +

मोहनलालका मूल्य बढ़ गया और उसकी गिरफ्तारीके लिए दो हजारका इनाम कर दिया गया।

+ + + +

विधिकी गति अपार है। मोहनलाल ज्वरसे पीड़ित अपने एक मात्र मित्र बदनसिंहकी सुसरालमें पड़ा था। बड़ा आश्वासन दिलाकर बदनसिंह उसको वहाँ छोड़ आया था। फसलें खड़ी थीं और एक घने ज्वारके खेतके एक भोंपड़ेमें वह ज्वरसे कराह रहा था। डाकेके हजारों रुपया बदनसिंह और मोहनलालने उन लोगोंको दिये थे जिनके यहाँ उसने अब आश्रय लिया था। भरी हुई बन्दूक उसके बगलमें रहती थी। गुप्तचुपसे उसका इलाज भी होता था। पर संसारके अनेक कार्य उन चाँदीके

टुकड़ोंसे—जिनको रुपया कहते हैं, बनते-बिगड़ते हैं। चाँदीके चमकते हुए टुकड़ोंने ही बदनसिंहकी ससुरालवालोंको अपने अतिथिके साथ विश्वासघात करनेके लिए बाध्य कर दिया। ओषधिमे तेज शराब मिला दी गई; मोहनलाल बेहोश हो गया। और जब उसे चेतना हुई तब उसने अपने आपको पुलिसकी हवालातमें दोहरी हथकड़ी और बेड़ियोंसे जकड़ा पाया। और बाहर पाँच सशस्त्र सिपाही पहरे पर थे।

+ + + +

मजिस्ट्रेटकी अदालत खचाखच भरी हुई थी। तिल रखने को भी स्थान न था। थोड़ीही देरमें बेड़ियोंकी मंकार सुनाई पड़ी और पुलिसके कड़े पहरेमें एक अभियुक्त लाया गया। मजिस्ट्रेटने पूछा—मोहनलाल, तुमने पाँच आदमियोंका खून किया ?

मोहनलाल—(बड़ी गम्भीरता से)—“जी हाँ, किया।”

मजिस्ट्रेट—“तुम अपने अपराध को स्वीकार करते हो या नहीं ?”

मोहनलाल—“मैं अपराधी नहीं हूँ।”

मजिस्ट्रेट—“सो कैसे ?”

मोहनलाल—“कानून अपराधी है। मुझे डाकू और खूनी बनानेका दायित्व कानून पर है। न पृथ्वीपाल छोड़ा जाता, और न आज मुझे दुनिया खूनी और डाकू कहनेको यहाँ जमा होती। आपकी और आपके कानूनकी दृष्टिमें कुछ भी कहाँ,

पर मैं अपने आपको अपराधी कदापि न कहूँगा । जनताकी राय को मैं ठुकराता हूँ ।”

मजिस्ट्रेट—“तुम कुछ और बयान देना चाहते हो ?”

मोहनलाल—“पूरा बयान तो मैं भगवान्‌के यहाँ दूँगा । पर जो कुछ और मुझे कहना होगा वह सेशनमें कहूँगा ।”

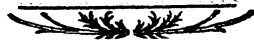
मजिस्ट्रेटने मोहनलालको सेशन-सुपुर्द कर दिया ।

x x x x

सेशनकी पेशीके दिन मोहनलालको लेनेके लिए एक मोटर जेल दरवाजेपर आई, जिसमें आठ-दस, संगीनों और बन्दूकोंसे सुसज्जित सिपाही बैठे थे । जेलखानेकी कोठरी खोली गई । मोहनलालका शरीर तो वहाँ था, परन्तु उसके प्राण-पखेरू उड़ चुके थे । कदाचित्‌ उसने इस खयालसे अफ़ोम खा ली थी कि उसके ब्राह्मण शरीरको फाँसी के बाद भंगी छुएँगे । इस प्रकार उसका बयान सेशनमें न हो पाया ।

—————

चन्दा



चन्दा ? हाँ, वह चन्दा है। आकाशमें उगनेवाले—विरहिन-
 दुखदाई और बच्चोंके मामा—चन्दाकी भाँति अंगदपुरका
 चन्दा चमार अपने घरवालोंकी दरिद्रता-रूपी रजनीके लिए
 विमल विधु है। उसकी वृद्धा माँ उसे देखकर, थोड़ी देरके
 लिए, अपने कष्ट भूल जाती है और संतोषकी साँस लेती है।
 अपनी पुत्रवधू—चन्दाकी स्त्री—को सुनाकर, इसलिए, वह
 दिन में कई बार कहती है—“बहू, बेदखली हो गई, तो कोई बात
 नहीं, तेरा सुहाग बना रहे। बुरे दिन किसीके नहीं रहते। ईमान-
 दागी नहीं छोड़नी चाहिये। कहीं-न-कहीं मजूरी मिल ही जायगी।
 बुरे दिन और भूक-प्यासकी कोई चिन्ता नहीं। राजा हरिश्चन्द्र
 जैसे भले राजापर आफत पड़ी थी। हाँ, मुझे रमल्लाकी चिन्ता
 है। वह बीमार है।”

बुढ़ियाकी बातोंको चन्दाकी स्त्री अन्यमनस्क भावसे सुनती
 और चमौटे-जैसे अपने हाथोंसे घर और बाहरका काम किया
 करती। उसकी दौरानी—रमल्लाकी स्त्री—को रमल्लाकी देखरेख

से ही अवकाश न मिलता, इसलिये वह अपनी जिठानीका हाथ न बँटा सकती ।

यों गर्मियोंके दिनोंमें कोई विशेष काम भी न था । खेतीके दिनों में जब चन्दा का सब घर खेतपर जुट जाता था, तब दोनों बहुओंको रोटी करने तककी फुरसत न मिलती थी ; पर परिश्रमी आदमी—विशेषकर परिश्रमी स्त्रियाँ—पड़े हुए कामसे ऐसे घिनाते हैं, जैसे खूनखच्चरसे परम वैष्णव । काम करने की उनकी प्रवृत्ति ऐसी होती है, जैसे ढलावकी ओर पानीकी । चन्दाकी स्त्री भी बड़ी कमाऊ थी । थोड़ेसे कामपर भी वह ऐसे दूट पड़ती, मानो उसे ढेरों काम करना हो, इस कारण बुढ़ियाकी बातोंपर वह विशेष ध्यान न देती । गर्मीके दिनोंमें अवकाश ही अवकाश था । चन्दा कामकी तलाशमें दिन-भर घूमता और मुँह फुलाये शामको घर आ जाता । कहीं काम होता, तो मिलता । जिस प्रकार ध्रुव-प्रदेशमें भालू शीतनिद्रा (Hibernation) में लीन हो जाते हैं, उसी प्रकार उत्तरभारतके गाँवोंमें काम और मजूरी ग्रीष्मकी उष्णतासे सूख जाते हैं । दस दिन तक चन्दा और उसकी माँने माँग-जाँचकर और उधार लेकर काम चलाया ; पर दस दिनके बाद खानेकी समस्या और भी उग्र हो गई । खानेकी समस्यासे अधिक कष्टदायक उधार वालोंके तक्काजे थे । ऋण भी तो हैसियतपर ही मिलता है । जीवनकी जड़ें, पेड़की जड़ोंके समान अनुकूल परिस्थितिमें ही पौड़ती हैं । चन्दाके कौटुम्बिक जीवन-रूपी पौधेको बेदखलीने उपजाऊ भूमिसे उखाड़कर दरिद्रता

और भूककी शुष्क चट्टानपर रखदिया था। दस दिन तक तो किसी प्रकार गुजर-बसर हुई, उसके बाद फाके होने लगे। खानेके लिए हवा और गम ही थे। सो गमसे पेटकी अग्नि कुंठित भले ही हो जाय, बुझती कदापि नहीं। और हवा—अच्छे स्वास्थ्य—से तो वह और भी प्रज्वलित हो जाती है।

× × × ×

जेठ की दुपहरीमें, जब पशु-पक्षियोंने पेड़ोंकी शरण ले ली थी, मैं पक्षी सड़कसे घरकी ओरको लपका आरहा था। कोई आध मील ही जाना था; और ऊसरमें होकर था रास्ता। दूरसे कुदाली की आवाज सुनाई पड़ी। मैंने सोचा कि ऐसा कौनसा पागल है, जो लू में कंकड़ खोद रहा है। खयाल किया, कोई कामचोर ठेकेवाला होगा, जो प्रातःकाल तक सोता होगा और दोपहरको काम करता होगा। पास आया, तो चौंककर खड़ा हो गया। शीघ्र ही पालागनसे अभिवादन हुआ।

“अरे चन्दा, मरेगा क्या ? जीव-जन्तु घबराकर पेड़ों के नीचे हैं, और तू दुपहरी अपने ऊपर काट रहा है !”—मैंने भर्त्सना की भावनासे कहा।

“पण्डितजी, मरना तो है ही। मेहनत करके क्यों न मरूँ ? छाया और आराम पशु-पक्षियोंको बदा होगा। यहाँ तो भाग्यमें जहर भी नहीं।”—वेदना मिश्रित मुस्कानसे चन्दाने कहा।

लँगोटा पहने, नंगे शरीर नंगे पैर और कुदालीके सहारे चन्दा खड़ा था। उसकी दग्ध आत्मा उसके रोम-रोमसे प्रस्फु-

टित होकर ज़मींदारी-प्रथाको शाप दे रही थी। मैं दो मास उपरान्त गाँवमें आ रहा था। चन्दाकी वेदखली और परेशानो सुनकर हृदयको एक चोट लगी। मन-ही-मन मैंने कहा कि चन्दा कंकड़ों का गढ़ा नहीं खोदरहा है, वरन् ज़मींदारी-प्रथाकी क़त्त, जिसमें, यदि अत्याचारकी यही गति रही तो, ज़मींदारी-प्रथाकी पूतना गड़ जायगी। “अरे, तू दो-चार धड़ी नाज मेरे भाई जगन्नाथसे ले आता।”—मैंने शिकायतन कहा।

“माँग-जाँचकर कब तक काम चलाता ? ले तो आया था ; पर फिर दुबारा जाने की हिम्मत न हुई।” चन्दाने नीचा सिर करके कहा।

मैं—“चल मेरे साथ ! पहले खाना खा और घरवालोंको आटा-दाल पहुँचा।”

चन्दा—“सो पण्डितजी, आपका ही खाता हूँ। आज ही ठेका लिया है। कंकड़ खोदकर ठेकेदारको दिखाना है, नहीं तो ठेकेदार निकाल देगा।”

मैं—“चल। ठेकेदारसे मैं भुगत लूँगा।”

घर आकर चन्दा को खाना खिलाया। उसकी पेटकी ज्वालाका बस चलता, तो पेट फाड़कर निकल पड़ती और सब खाना खा जाती। पानी पीकर चन्दा कुछ लेटा और अरहर की दाल और आटा लेकर घर पहुँचा।

अगले दिन प्रातःकाल मैं अपना सामान बाँध रहा था। बच्चे चारों ओर खेल रहे थे। कोई बिस्तरेपर आ बैठता, तो कोई मेरी किताबें लाता। कठोरताको पिघलानेके लिए बच्चों का दृश्य मोमवत्तीसे अग्नि स्पर्श करना है। संसारमें कौन ऐसा है, जो अबोध और सौन्दर्यकी प्रतिमा—बच्चों—को देखकर द्रवित न हो जाय। नराधम और नरपशु ही बच्चोंपर हाथ उठा सकते हैं। किसी बच्चेको हटकना, तां किसीसे सामान बँधानेमें सहायता लेता। सामान बाँधकर खड़ा हुआ, तो सामने मुँह लटकाये चन्दा खड़ा था।

“अरे, क्या हुआ ? गुम-सुम क्यों खड़ा है ?”—मैंने आश्चर्यसे पूछा।

चन्दा—“कुछ कहनेकी बात नहीं, पंडितजी !”

मैं—“क्यों ? क्यों ? क्या हुआ ?”

चन्दा—“कल तो परसो थाली सामनेसे उठ गई।”—कहकर चन्दाकी आँखें नीचेको हो गईं और उसके क्लान्त कपोलों पर आँसू ढलक गये।

+ + + +

चन्दाकी वेदखली तो हुई थी; पर साथमें उसके सिरपर बक्राया लगानकी डिग्री भी थी। पास-पल्ले तो उसके कुछ था ही नहीं; पर हुकूमतकी धाक जमानेके लिए जमींदार साहबने घरके बर्तन-भाँड़े भी कुर्की कराने चाहे। कई बार कुर्की आई

थी; पर घर भीतरसे बन्द मिलता। उस दिन चन्दा आटा और दाल लेकर पहुँचा, तो उसके घरमें चहल-पहल मच गई। गेहूँका आटा, अरहरकी दाल, जिसमें हरी खटाई पड़ी हो और पोदीनाकी चटनी मिलनेकी पूर्ण आशा एक गरीब परिवारके लिए, जो कई दिनसे फाँके कर रहा हो, कितनी सुखदायी होती है, इस बातका अनुभव भुक्तभोगी ही कर सकते हैं। वच्चे भूखसे तड़प रहे हों और माँकी गोदमें भाग-भागकर रोटीके लिए रुठ पड़ते हों तथा आसपासके बच्चोंको खाना खाते देखकर अपनी माँसे मचल जाते हों; और माँके पास अपनी गोद और चुमकारके अतिरिक्त पेटकी अग्निकी शान्तिके लिए कुछ न हो; ऐसी दशामें किसीको भरपेट भोजनकी सामग्री मिल जाय, तो उसकी कल्पना सहृदय हो भले कर सकें।

चन्दाने विजयीकी भाँति घरमें जाकर जो आटा—गेहूँका आटा—और दाल रखी, तो उसकी वृद्धा माँ और उसकी स्त्रीकी आँखोंमें ज्योति प्रज्वलित हो गई। थोड़ी देरमें चूल्हा चढ़ा और खाना बन गया। लाल मिर्च डालकर और खून बटकर आमकी चटनी भी तैयार की गई।

घरमें तीन थालियाँ, एक बटलोई और एक कटोरा था। दोनों बहुओंने एक थालीमें भोजन परोसा। चन्दाने अपनी थालीमें एक बालिशत ऊँची रोटियाँ परसीं। उसकी माँने पानी रखकर कौर तोड़ा। एकआध रोटी ही वे लोग खा पाये होंगे

कि एकदम चन्दाके मकानमें बीसों आदमी भर गये । वे कुर्की-वाले और जमींदारके गुर्गे थे । भूखे कुटुम्बके सामनेसे परसी थालियाँ पकड़ ली गईं । स्त्रियाँ एक ओरसे परसी थालियोंको खींच रही थीं और दूसरी ओरमे जमींदारके गुर्गे । भूख और नृशंसतामें रसाकशी थी । पीड़ित और अत्याचारीका युद्ध था । स्त्रियों और चन्दाके पेटमें छिपा भूकने तड़पकर अपनी सारी शक्ति हाथोंको दे दी । आँखोंकी ज्योतिने हाथोंको बिजली दी, और एक-एक आदमी उन मुक्कड़ोंके हाथसे थालियाँ न छीन सका । तब और आदमियोंने औरतोंके हाथोंको एक ओरको खींचा और दूसरी ओरको थालियाँ खींची गईं ।

× × × ×

थालियाँ, कटोरा और बटलोई चली गईं ; पर उनके साथ भूख न गई । घरमें मुरदनी-सी छा गई । औरतें सिसक-सिसककर रोने लगीं । चन्दाकी स्त्रीकी गोदका बच्चा, जो मातृ-स्तनसे खूनका पान कर रहा था, गिरकर रो रहा था, और रमझा परेशान एक दूसरी ओर पड़ा था ।

× × × ×

चन्दा अब भी मजदूरी करता है । खेती-पातीसे हाथ धो बैठा है ; पर जमींदारीके प्रति उसके हृदयमें बड़ो कटुता है । उसकी और उसके जैसे करोड़ों किसानोंकी कटुता उन्हांके दिलोंको जला रही है । दिलमें एक गुबार-सा भरा है ।

चन्दासे जब कोई और, विशेषकर कोई अहीर, उसकी

कुर्कीकी चर्चा करने लगता है, तब वह अर्द्धमुस्कानसे व्यंग्यमें कह उठता है—“अरे ठाकुर, अबैनू (अब तक) भंगो पातरें उठावत ए—अब अहीर लोग मेरी भूठी थरिया उठावन लागे ।”

झिड़के जानेपर वह हँस पड़ता है । कितना करुणापूर्ण है यह व्यंग्य ।

रतना की अम्माँ



दोपहरको भोजनके उपरान्त अपनी कुटियापर पड़ा हुआ एक मित्रसे बातें कर रहा था कि एक बुढ़िया कुटियाकी दीवारसे आकर खड़ी होगई। उसे देखकर मैंने गम्भीरतासे कहा—“डुको, जा खन रुपिया तो है ना, तुम नई-निकोर फरियाई चौन लै लेउ।”

मेरे बोलनेसे बुढ़ियाको कुछ साहस हुआ और अधीनतासे उसने कहा—“तौ तौ लला, काम बनि जाइ। मोइ फिर काऊके निहोरे नई कन्ने परिंगे। मोपै सैर कूँ चलौ न जातु।”

यह सुनकर मैं तनक चिंतित हो गया। मेरा खयाल था कि बुढ़िया रुपया लेना ही पसन्द करेगी। उस दिन मेरे पास कुछ था ही नहीं, और यह कहकर कि पैंठके दिन आना, रुपया ले जाना, मैं उसे उस दिन टालना चाहता था; पर वह तो तन ढकने के लिये कपड़ा ही चाहती थी। रुपयाकी भूखी न थी। अपने फैलाये हुए जालमें मैं ही फँस गया। सिर खुजलाता हुआ उठा और बुढ़ियासे बैठने को कहकर घरकी ओर चला।

यदि घरसे कोई नई ओढ़नी मिल जाय तो बात रहजाय, अन्यथा बुढ़िया यह समझेगी कि मैंने उसे भाँसा ही दिया—यह सोचते हुए मैं घर पहुँचा। असहाय वृद्धाके लिए मुझे एक ओढ़नी चाहिए—यह प्रस्ताव सुनकर श्रोमतीजीने झटपट ट्रंक खोलकर एक ओढ़नी दे दी। मेरे हाथमें ओढ़नी देते हुए उनके मुख-मंडलपर आन्तरिक सुखकी ज्योति दीप्तमान होगई। स्त्रियाँ स्वभावसे ही भावुक होती हैं, और फिर उस बुढ़ियाके प्रति तो गाँव-भरकी सहानुभूति थी। ओढ़नी लेकर मैं कुटियापर आया और उस बुढ़िया को देकर कहा—“बैसाखमें फिर लै जैओ।”

ओढ़नी को बगलमें दबाकर बुढ़ियाने कहा—“पनिमेसुर करै, तुम लला दूधन न्हाउ और पूतन फत्तौ। तुमाओ ढोटा (बेटा) जुग-जुग जियै।”

ढोटा कहते हुए बुढ़ियाकी आकृति वेदनासूचक हो गई। भीतर से कुछ तूफान-सा उठता प्रतीत हुआ। उसके दोनों नेत्र सजल हो गये। एक मोती-सा ढरका और उसके झुर्रीदार कपोलपर होकर ज़मीनपर गिरकर विलीयमान हो गया—पृथ्वीने उसे पी लिया। ढोटा शब्दके उच्चारणसे अतीतकी स्मृति जाग्रत् हो गई। उस स्मृतिने उसके हृदयके घावको दुखा दिया, और उस घावसे आँसूके रूपमें हृदय-रक्तकी बूँद टपक पड़ी। बुढ़िया उठकर चलीगई। उसके आशीर्वादके ढोटा शब्दसे मुझे बुढ़ियाकी मनोव्यथाका भान हुआ। मैं अपने मित्रकी ओर बढ़ा, और बैठने

भी न पाया था कि उन्होंने कहा—“यह बुढ़िया कौन है ? और ‘तुमाओ ढोटा जुग-जुग जियै’ कहते हुए वह रो क्यों पड़ी ?”

मैं—“वह बुढ़िया रतना की अम्मों है । कुछ वर्ष पूर्व उस पर गाज गिरी थी, और उस घटनाका चित्र उसके सम्मुख आ जाता है, तो वह विह्वल हो जाती है ।”

मित्र—“आखिर बात क्या थी ? ज़रा समझाकर कहिये ।”

“एक दुःखान्त कहानीको सुनकर क्या करागे ?”—मैंने लम्बी साँस लेकर कहा । उन मित्रने आग्रह किया, और मुझे कहना ही पड़ा ।

+ + + +

अबसे १८ वर्ष पहलेकी बात है । रतनाकी अम्मों अपने पति धर्मजीतके साथ इस गाँवमें आई थी । उस समय रतना छै-सात वर्षका अबोध बालक था । रतनाकी अम्मोंका इस गाँवमें आनेका कारण था—एक ज़मींदारका अत्याचार । ज़मींदार धर्मजीतसे भूँठी गवाही दिलवाना चाहता था । धर्मजीत था तो जातका चमार, पर बड़ा ही धर्मभीरु था, और फिर वह बाल-बच्चेदार आदमी भी था । ज़मींदारने जब उसे बहुत तंग किया और गवाही न देनेपर बेदखली तथा खेत कटवा लेने की धमकी दी, तब धर्मजीतने अपनी गृहिणीसे अन्तिम परामर्श किया । रतनाकी अम्मोंने आवेशमें उत्तर दिया—“तो तुम भूठी गंगाजली उठाइ जाउगे ? रतनाकी लंगकूँ देखौ, बाऊकैँ रतना के संगकौ लरिका है । तुमाई गवाई सूँ बाइ जेल है गई, तो सरापु परैगो ।”

धर्मजीत स्वयं गवाही नहीं देना चाहता था, फिर जब उसको अपनी स्त्रीका सहारा मिल गया, तब तो उसका साहस दूना हो गया, शरीरसे दोनों प्राणी इतने मजबूत थे कि आसपास उनकी-सी हड्डीवाला कोई व्यक्ति न था। वे इस युगके नथे, पर जमींदारकी शक्तिके सम्मुख उस दम्पतीकी एक न चली। आखिर हार मानकर अपनी मौरूसी काशत छोड़कर धर्मजीत अपनी स्त्री सहित यहाँ आ बसा, और अपने भरे-पूरे घरको छोड़, अपने बाहुबलके भरोसे नवीन जीवन बिताने लगा।

गाँववालों की बहुमूल्य पूँजी है बढ़िया स्वास्थ्य। सो उस पूँजीके वे दोनों धनी थे। धर्मजीतमें इतना दम था कि मन-डेढ़मन की गठरीको वह अपने आप उठा लेता। हल जोतने और कुढ़ी करनेमें (गैँहूँ और जौ बोने के समय हल चलानेमें) वह अपना सानी न रखता था। जब गाँवमें साधारण मजदूरी दो आना होती, तब कुढ़ी करनेके लिए धर्मजीतको लोग आठ आना और खुराकपर ले जाते। रतनाकी अम्माँ घास काटने, कपास बीनने तथा अन्य कामोंमें व्यस्त रहती। चीटियाँ जिस प्रकार एक-एक दाना एकत्र करके ढेर जमा कर लेती हैं, उसी प्रकार उन दोनोंने थोड़ा-थोड़ा बचाकर कुछ जमा कर लिया। दो वर्ष पीछे उन्होंने एक जोड़ी बैल मोल लिये और बनियेके यहाँ घी कटऊँ करके एक भैंस ले ली। दोपहरको जब धर्मजीत खेतपर से आता तब नीमके नीचे मकानके बाहर बैठ जाता। रतनाकी अम्माँ उसे हुक्का

भर देती । मैंने उसे बीसों बार उस समय हुक्का पीते देखा है । धुआँका कश खींचकर जब वह धुआँको ऊपर निकालता, तब मालूम होता था, मानो वह थकानको शरीरसे निकाल रहा है और दार्शनिककी भाँति अतीतकी स्मृतिको उपेक्षाकी दृष्टिसे देख रहा है । उसके पुराने कष्ट धुएँकी भाँति ही उड़ गये थे । हुक्का गुड़गुड़ाते देर यदि हो जाती, तो रतनाकी अम्माँ भीतरसे आती और प्रेमजन्य क्रोधमें कहती—“रोटीऊ खाउगे, कै जा धुआँ सूई पेट भरोगे ।”

हुक्का उसे देते हुए धर्मजीत कहता—“अरे, तो ना देर है गई ।”

इसी प्रकार उनके दिन कटने लगे । घर भरपूर था । उधर रतना भी बबूलकी भाँति बढ़ता चला आ रहा था । दो नदियाँ जिस प्रकार मित्र-भिन्न स्थानोंसे निकलकर एक स्थानपर मिलती हैं और संगम बनाती हैं, स्त्री और पुरुष भी कहीं जन्म लेते हैं, और विवाह-संगममें आकर मिलते हैं, और एक होकर अधिक शक्तिसे अपनी जीवन-धारा बहाते हैं । समुद्रमें गिरनेसे पूर्व अनेक नदियाँ, डेल्टा-क्षेत्रमें, कई भागोंमें बँट जाती हैं, और उनकी धारामें वह प्रणय-वेग नहीं होता, जो युवावस्था और अधेड़ावस्थामें होता है । धर्मजीत और रतनाकी अम्माँ भी बुढ़ापेमें रतनाकी बढ़ती जवानी देखकर सन्तुष्ट और शान्त थे । वे जानते थे कि वे पके आमकी भाँति तनक वायुके झकोरेसे टपक पड़ेंगे, इसलिए उन्हें कोई विशेष चिन्ता न थी । जिसकी—रतनाकी—चिन्ता थी, सो उसके लिए उन्होंने सब कुछ कर

दिया था। बाल-बच्चोंका सुप्रबन्ध किये बिना यह शरीर छोड़ देना बिना टिकटके रेलमें बैठना है। रतनाकी अम्माँ और धर्मजीत अपना टिकट कटा चुके थे। उन्होंने उसके लिए घर बना दिया था। विवाह कर दिया था। घरपर भैंस और बैल थे। किसीका कुछ देना न था और सबसे अच्छी बात यह थी कि रतना खेतीके काममें प्रवीण हो चुका था। बर्त बनाने, बीज बोने, कुआँ खोदने और पशुओंकी छोटी-मोटी बीमारियोंकी ओषधियोंका भी उसे ज्ञान था। आसपासके लोग अब परामर्श के लिए बूढ़े धर्मजीतको न बुलाते थे, वरन रतनाको। धर्मजीत अब उस बरगदकी पुरानी पीड़के समान था, जो समय पाकर खोखली हो जाती है, और उसके आसपास उसीमें से नवीन पीड़ें निकल पड़ती हैं। गाँवमें या पड़ोसमें कहीं कुआँ होता, तो रतनाको जरूर बुलाया जाता। मजदूरी तो वह करारी लेता था, पर जिस कुँएँको रतना करता, उसमें कोई धोखेकी बात न होती थी। साथमें जहाँ कहीं रतना कुआँ करने जाता, धर्मजीत यों ही समय काटनेके लिए वहाँ चला जाता और ऊपरसे कुँएँमें भीतर काम करनेवालोंको सलाह दिया करता और अपनी जवानीकी कारगुजारियोंका वर्णन किया करता। उसकी बातोंसे मनोरंजनके अतिरिक्त कुआँ करनेवालोंको प्रोत्साहन भी मिलता। इसी प्रकार धर्मजीतका बुढ़ापा आरहा था, और उसका रोपा हुआ पौधा—रतना—उसके देखते-देखते एक विशाल वृक्ष हो गया।

x

x

x

x

संसारमें प्रत्येक पार्थिव वस्तुकी आयु है। केवल समयका अन्तर है। आम जब पक जाता है, तब वायुके तनकसे झकोरेसे गिर पड़ता है, और यदि वायुका झकोरा न भी आवे, तो भी वह टपक पड़ता है। डंठल गलकर शक्तिहीन हो जाता है। धर्मजीतकी आयु-रूपी रस्सी गल गई, और वह एक दिनके बुखारसे चल बसा ! बुढ़िया रोई, पर एक संन्यासिनीकी भाँति । रतनाके सम्मुख—अपने विवाह-जीवनके एकमात्र फलके सम्मुख—वह धर्मजीतके विरहको एक दार्शनिककी भाँति भूल गई, और बड़े-बूढ़ोंकी तरह वह घरके काममें रत हो गई ।

x

x

x

x

देशमें चारों ओर सूखाकी चर्चा थी। मेह न तो समयपर ही बरसा और न काफ़ी बरसा। खरीफ़की फसल सब बिगड़ गई। बाजरा और ज्वारके पौधे बाल निकलनेसे पूर्व ही सूख गये ! अन्न और चारेका घोर कष्ट हो गया। सबसे बड़ी आफ़त यह हुई कि सूखा पड़नेसे रब्बीकी फसल भी नहीं बोई जा सकी। कुआँसे खेतोंकी परेवट करके बीज बोना विरलोंका ही काम था, पर जिन किसानोंके पास बैल थे, और जिनको मज़दूर नहीं करने थे, वे परेवटमें लग गये। कुआँकी मरम्मत और नवीन कुआँ बनानेमें किसान लगे हुए थे, और रतनाकी माँग चारों ओरसे थी। प्रतिदिन किसानोंकी टोली-की-टोली रतनाके घरपर एकत्र होती और उसे अपने-अपने कुएँपर ले

जानेको प्रोत्साहन देती, पर रतनाकी अम्मा सबसे पहले आने-वालेको ही वचन देती ।

एक दिन एक किसानने रतनाकी माँको आधी रातको ही जा जगाया । बुढ़ियाने बिगड़कर कहा—“अए निगोड़े सोमन ऊँ देइगौ कि नाइ । कल्लिके हारौ-नीरौ बु (रतना) डरौ ऐ । आजु बु कऊँ नई जाइगौ ।”

किसान—“तो मेअौ कुअौ जौई रहि जाइगौ । आजु धर्म-जीतु डोकर हांते, तो सिबकौ काम छोड़िकें मेअौ काम कते ।”

धर्मजीतका नाम सुनकर बुढ़िया कुछ लज्जित-सी हुई, और कहा—“तौ जा, तेरैई बु आबैगौ ।”

× × × ×

दिनके दस बजेके लगभग रतनाने कुदाल और बेलचा उठाया, और घरसे बाहर ज्योंही उसने पैर दिये कि छींक हुई । बुढ़ियाने झपटकर रतनाको पकड़ा और कहा कि चाहे कुछहो, आज कुअौ करने न जा । छींकका अशकुन हुआ है, पर रतनाने न माना और कहा कि ऐसी छींकें तो रोज़ होती हैं । छींकोंसे दुनियाके काम थोड़े ही रुक सकते हैं । बुढ़ियाने सशंकित दृष्टिसे रतनाको जाते देखा ।

× × × ×

कुअौ खोदते-खोदते शाम होने आई थी, पर अभी सोत न लगा था । रतनाने कुअौके भीतरसे कहा कि तेज बेल मँगाकर

एक घण्टा और काम करो, तो सोत लग सकता है, नहीं तो कलका सारा दिन लग जायगा और कुआँका पानी भी न टूटेगा।

नये बैल मँगाये गये, और जोरोंसे तार होने लगी। रतनाने अपनी बलिष्ठ भुजाओंसे कुएँ को खोदना प्रारम्भ किया। बैल तेज थे। धकापेल मच गई, पर अभी पन्द्रह मिनट भी इस गतिसे काम न हुआ था कि 'खोंगा' हो गया। जल्दीमें बर्त गिरीसे उतर गई। पुरका बोझ भारी था। बैल लौट पड़े। जुएकी सैलें टूट गई और सन्नाटेके साथ जुएकी ठोकर गिरीसे लगी। कुएँका नया काम था—और गरीब किसानका काम था। गिरीँड़ा (वह लकड़ी जिसपर गिरी फिरती है) टूट गया। धड़ामसे गिरी कुएँमें गिरी। कुएँसे एक कराहनेकी आवाज़ आई !

डाक्टर बुलाया गया, पर कुछ न हुआ। रतनाकी लाश श्मशान भेज दी गई !

उस दिनसे रतनाकी अम्माँ पहलेकी रतनाकी अम्माँ नहीं है। उसने पुत्र-शोकमें पन्द्रह दिन तक अन्न-जल नहीं किया। दो बार बेटेकी यादमें रेलसे कट कर प्राण देनेकी चेष्टा भी की। उसके घावपर अब ऊपरसे पपड़ी-सी छा गई है, पर भीतर वह घाव वैसा ही है। उसने अपनी 'किशती खुदापर छोड़ दी है' और 'लंगर भी तोड़ दिया' है। रतनाकी बहू भी उसे

छोड़कर चली गई है। पर जीवन उसे अभी नहीं छोड़ता। रतनाकी अम्माँ अब सबकी दयाकी पात्र है। प्रति दिन उठकर वह यही प्रार्थना करती है कि भगवान् उसको शीघ्र ही धर्मजीत और रतनासे मिला दें।

इकाई का सौदा



स्वाभिमान और स्वदेशाभिमान, वास्तवमें एक ही शक्तिके नाम हैं। परिस्थितिके अनुसार उस शक्ति—आप उसे भावना भी कह सकते हैं—के दो नामकरण किये गये हैं—वास्तविक तत्त्वके समान जो ब्रह्मा, विष्णु और महेशके रूपमें एक ही शक्ति है। हाँ, नाम भिन्न हैं, प्रकाश (Light) और गर्मी (Heat) की भाँति जो बिजलीकी एक विशेष इकाईमें दोनों एक ही चीज़ है।

और यह मानवी पुतला भी तो एक इकाई है, जिसमें वास्तविक तत्त्वके गुण निहित हैं और जो, अवसम्बन्धनुसार, स्वाभिमान और स्वदेशाभिमानका प्रदर्शन करता है।

यह बात भी ठीक है कि सभी इकाइयाँ एकसी नहीं होतीं। कोई सूखी बारूदके समान होती हैं जो तनक-सी चिनगारीसे भड़क जाती हैं। कुछ इकाइयाँ भीगी बारूद-सी होती हैं और कुछ बिल्कुल निस्तेज—जिन्दा मुर्दा—बस चलते-फिरते कीड़े-मकोड़ोंके समान। सुधाएकी उनमें भी सम्भावना है; पर समय

और सुधारक चाहिए । लेकिन संसार आकर्षित होता है—
सजीव इकाई-मानवी-डाइनमोसे ।

+ + + +

“हुजूर बहुत समझाया पर संकट ब्राह्मण मानता ही नहीं ।”

“क्या कहता है ?”

“यही कहता है कि वोट देने और ज़मींदारीसे क्या सम्बन्ध ?
ज़मींदार अपना लगान ले वक्त पर । उसके खेत हम बिगाड़ते
नहीं, उससे लड़ते नहीं । लगानकी अदायगीमें कभी चूक
हुई नहीं; फिर भी ज़मींदार साहब हमें क्यों दबाते हैं—वोट
 देनेको । चलते बैलमें आर क्यों लगाते हैं ?”

“पर तुमने कहा नहीं कि है तो तू रियाया ।”

“मालिक, सब कुछ कहा । मैंने खूब समझाया कि आपेसे
बाहर न हो । ज़मींदार मालिक है, और काश्तकार रियाया ।
सौ तरहसे काश्तकारको दबना पड़ता है । ज़मींदारके खिलाफ़
जानेके मानी हैं चलती रेलगाड़ीके सामने खड़े हो जाना ।
जिस-जिसने मालिककी हुकूमत नहीं मानी वह बर्बाद हो गया ।
मालिक जिसके लिए कहते हैं उसे ही वोट दो नहीं तो फिर लेनेके
देने पड़ जायेंगे ।”

“और वह तब भी नहीं माना ?”

“नहीं, हुजूर नहीं माना और उल्टी लाल-पीली आँखें दिखा-
कर उसने कहा कि मालिक गये गधैयाकी…… मेरी उनसे सात
भाँवरें नहीं पड़ीं जो ज़मींदारको मालिक बताते हो । वोट

हमारे मनमें आयगी उसे देंगे। आज वोट माँगते हैं। कल हमारी स्त्री माँगेंगे। माँगें अपना लगान और उसके न देनेपर करें बेदखल।”

“और उल्लूके पट्टे तू ये बातें योंही सुनता रहा। तेरे ही जैसे नालायक ज़िलेदारोंके कारण हुकूमत बिगड़ गई।”

“अन्नदाता, मेरी उससे फ़ौजदारी होते-होते बची। आपका नमक खाया है। मेरा रोम-रोम मालिककी कृपासे बना है। आपकी बेइज्जती कहीं देख सकता हूँ? गुलाम की आँखें और कान फूटें जो मालिककी बेइज्जती देखें और सुनें।”

ये बातें हुई ज़मींदार ठाकुर विक्रमसिंह और उनके ज़िलेदार सूबेदारसिंहमें, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड चुनावकी सरगरमीके दिनोंमें। एक तो चुनावके दिनोंमें लोगोंके दिमागकी हालत सन्निपात के रोगीके समान हो जाती है, जो कुछ न कुछ बकता ही रहता है। सन्निपातके रोगी और कनवैसरमें अन्तर केवल इतना है कि सन्निपातका रोगी ज्वरसे पीड़ित होता है, और कनवैसर चुनाव-ज्वर से। और फिर कहीं ज़मींदार कनवैसर हुआ और वोट माँगने हुए अपने काशतकारोंसे, तो फिर वह वोटरको अपनी निजी सम्पत्ति समझता है, जिसका प्रयोग वह मन माने ढंगसे करने का इच्छुक होता है।

ठाकुर विक्रमसिंहका दबदबा एक तो सम्पन्न ज़मींदार होने के कारण यों ही था। रुपयेकी ताकतको वह ख़ूब समझते थे। किसी भी अकड़फूँ काशतकारको पुलिससे पिटवा देनेकी फ़ीस

थी—बस पच्चीस चाँदी के टुकड़े । प्रत्येक चीजका उनके यहाँ मोल था । उन्हें रायबहादुरी ही मिली थी दस हजार खर्च करनेसे और वह खुल्लमखुल्ला कह भी देते थे कि जिसके पास रुपयेकी ताकत हो उसके पास सब कुछ है । उनके जीवनके अनुभवका मूल मंत्र था—“रुपएकी बदौलत सब कुछ ।” यह भावना उनकी शक्तिका आधार थी,—उस दीपकके समान जिसके सहारे घरका बूढ़ा अँधेरेमें इधर-उधर चल-फिर सकता है, और जिसके उठा देनेसे वह बेबस होकर अंधकारमें पड़ा रहता है ।

ठाकुर विक्रमसिंह जानते थे कि अपने विरोधी बोटरोको किसी न किसी दावसे वे पछाड़ लेंगे । दो-चार दस-बीस रुपएसे ठीक हो जायँगे और दस-बीस बेदखलीकी धमकीमें ऐसे आ जायँगे जैसे बच्चे बन्दर-घुड़कीमें । दो-चार खेत कटाने और जानवर बाड़ेमें बन्द करानेसे क्वाबूमें आ जायँगे । कुछको रिश्तेदारोंसे ठीक करा लिया जायगा । इसी ढँगसे उन्होंने पिछले पाँच चुनाव जीते थे । इस बारके चुनावमें उनको संकटप्रसाद ब्राह्मणके विरुद्ध शिकायत ही नहीं वरन् द्वेषपूर्ण घृणा भी थी । और उसका कारण संकटप्रसादकी केवल हेकड़ी ही नहीं था । अपने काश्तकारकी हेकड़ीको पहले तो विक्रमसिंह ढीला कर देते थे और ढीला न कर सकनेपर उसे उपेक्षाकी दृष्टिसे देखा करते—हाथीके समान जिसपर दूरसे कुत्ते भूँका ही करते हैं । पर द्वेषपूर्ण घृणाका कारण और ही था । बोटके मामलेने तो उसे प्रज्वलित कर दिया था । घृणा आत्माका

यक्ष्मा रोग है । ठाकुर विक्रमसिंहकी आत्मा, पवित्रताकी दृष्टिसे, सहरी चिरागके समान थी जिसकी कुछ ही घड़ियाँ शेष होती हैं । संकटप्रसादके प्रति घृणा और द्वेषका मुख्य कारण था जमींदारी प्रथाके विषयमें उसका यह अटल विश्वास कि जमींदारी प्रथा भारतीय संस्कृति, भारतीय इतिहास और आधुनिक जीवनकी आवश्यकताओंके विरुद्ध है । चुनावके दिनोंमें संकटप्रसादने जमींदारी प्रथाके विरुद्ध अनेक तुकबन्दियाँ बनाकर लोगोंको सुनाई थीं और एक कनवैसरसे तू-तड़ाक होनेपर उनको कुरमी भी कह दिया था । संकटने इस प्रकार दुधारी तलवारसे उनपर हमला किया था । चुनावकी सरगरमीमें जमींदारी प्रथापर कुठाराघात करने और उनकी जातपर अंगुशतनुमाई करनेसे संकटप्रसादने ठाकुर विक्रमसिंहको घायल शेरकी भाँति क्रोधित कर दिया था और बदलेकी भावना ठाकुर विक्रमसिंहके हृदयमें हिलोर ले रही थी । संकटप्रसाद समयपर लगान देता था । इसलिए बक्राया लगानका पेच उसपर जबरदस्ती नहीं चल सकता था । उसका साथ देनेवाले भी कुछ आदमी थे, इसलिए, फौजदारीकी बात भी समझमें न आती थी । हाँ, पुलिसके कुत्ते उसपर हुलकारे जा सकते थे; पर वे कुत्ते भी संकटसे चौंकते थे । पर काश्तकार रूपी बकरेकी खैर कब तक मनाई जा सकती थी । जमींदारीके जालमें काश्तकार कभी न कभी फँस ही जाता है । खेतकी मेंड़ बढ़ा ली है, खेतमें भोंपड़ी बना ली है जिससे काश्तको हानि पहुँचती है, मकानमें बिना

आज्ञाके दरवाजा खोल लिया है, खेतमें पेड़ लगा लिये हैं—
ऐसी ही बातोंपर किसानोंपर बेदखली और अन्य मुक्तदमे चलाये
जाते हैं ! ठाकुर विक्रमसिंह इन सब उपायोंको ऐसे सोच रहे थे
जैसे चिड़िया पकड़नेके लिए बिल्ली धात लगाती है और इस
अन्दाज़में बैठी पूँछ हिलाती है कि चिड़िया उसकी उछालकी
मारमें आजाय । इतने फंदोंसे वचकर किसान रूपी चिड़िया
कैसे निकल सकती है—ऐसे ही विचारोंमें लीन ठाकुर विक्रमसिंहने
कई घण्टे बिता दिए । पनडुब्बा जैसे पानीमें डूबकर मोतीकी
सीप ढूँढ़ता है वैसे ही ठाकुर विक्रमसिंहने विचारभग्न होकर
किसी योजना रूपी मोतीको ढूँढ़ा । कभी एक योजनासे आगे
रखते और कभी दूसरीको । थोड़ी देर बाद उसे भी रह कर
देते । कभी फौजदारी करके संकटप्रसादको ठीक करनेकी तज-
वीज सोचते और कभी पुलिस द्वारा कोई मुक्तदमा लगाकर उसे
सतानेकी योजना बाँधते और फिर थोड़ी देर बाद खेत कटानेकी
तरकीबपर आ डटते और सिर हिलाकर फिर और कुछ सोचने
लगते ।

मनकी डॉवाडोल स्थितिमें किसी निर्णयपर आना बड़ा कठिन
होता है । निर्णय-नैया विचारोंकी तरंगोंपर इधरसे उधर कँपती-
सी फिरती है और किसी किनारेपर नहीं लगती । अमुक योजना
ठाक होगी और स्थिर बुद्धिसे सफलताकी भल-रूसी भी दिखाई
पड़ती है । थोड़ी देर बाद अस्थिरताके बादल पूर्व योजनाको
आच्छन्न कर लेते हैं और फिर कोई नई परिस्थिति सूझती है ।

ठाकुर विक्रमसिंहकी मानसिक दशा भी कुछ ऐसी ही थी ; पर अन्तमें उनको निर्णय-योजनाकी नाव किनारे लगी—तूफानमें पड़ी नावके समान जो नाविकोंके कौशलके कारण नहीं वरन् तूफानकी अनिश्चित गतिके कारण ही, भाग्यवश, किनारे लग जाती है । ठाकुर विक्रमसिंहने बुद्धि और रुपएके बलसे संकट-प्रसादको परास्त करनेका निश्चय किया । उनके मनका प्रियपण थोड़ेसे शब्दोंमें यां किया जा सकता है—शेर कितना बलशाली है ; पर लुकलुपकर ही अपने शिकारपर टूटता है । और फिर किसी व्यक्तिको बुरी मौत मारना हो तो उसे गरीब बना दो । सौ ऐबोंका एक ऐब गरीबी है । वह सौ बीमारियोंकी एक बीमारी है । लाखोंमें दो-चार गरीबोंके ही नैतिक मेरुदण्ड होता है । गरीब लोग जिनकी तिल्लियाँ बढ़ी हुई हैं, जिनके शरीरोंमें कर्ज और भूकके घुन लगे हुए हैं, वे बिश्रोह तो क्या मुकाबिला भी नहीं कर सकते । हाँ, आवेशमें आकर क्षणिक युद्ध करके मर सकते हैं । ठाकुर विक्रमसिंह मनोविज्ञान के पण्डित न थे, पर भूक और अत्याचारके तीर छोड़ने में निपुण थे । बीसों बार ऐसे तीर छोड़ चुके थे और उनके तीर निशानेपर पड़े थे । संकटप्रसादपर वही अमोघ अस्त्र चलानेका निश्चय किया । मुक्तदमेबाज़ीमें उसे थकाकर बेहाल करा दिया जाय फिर वह, स्वयं ही घुटने टेक देगा । जब लड़ते-लड़ते वह थक जायगा तब उसका ज़मींदारी प्रथाके विरुद्ध आन्दोलन—उनकी हुकूमतके विरुद्ध प्रचार स्वतः ही मिट

जायगा । कुँ एमें पानी ही न होगा तब कोई पानी वहाँसे कैसे निकालेगा । जब स्रोत ही सूख गया तब धार तो खुद ही बन्द हो जायगी ।

ठाकुर विक्रमसिंह अपने सरकश काश्तकार संकटप्रसादको घुला-घुलाकर—परेशान करके—कुत्तेकी मौत मारनेका स्वप्न देखने लगे । एक मुक्तदमा दायर होगा, उसमें उसके हजार-पाँचसौ खर्च होंगे और तब फिर दूसरा और फिर तीसरा और इसी प्रकार मुक्तदमोंका ताँता पुर जायगा—एकके बाद दूसरा । फल-स्वरूप संकटप्रसादकी खेती बिगड़ेगी । रुपया कोई कर्ज न देगा । साथी साथ छोड़ देंगे और रुपए और साथियोंके साथ छोड़नेसे उसका साहस, उसके विचार, उसका विद्रोह और उसके घरवाले भी साथ छोड़ देंगे और संकटका चलता-फिरता कंकाल-सा ही दिखाई देगा जिसकी मुखाकृति पराजय, याचना, करुणा और दीनताकी परिचायक होगी । कौएको मारकर खेत पर टाँगनेसे और कौए नहीं आते । इसी प्रकार संकटकी आँखें देखकर—वे आँखें जिनमें कभी विद्रोह और सरकशी की ज्वाला प्रज्वलित थी—लोगोंको सबक्र मिलेगा । जब अपने भूके-प्यासे बच्चोंकी उँगलियाँ पकड़कर गाँवकी गलियोंमें सिर नीचा किये वह निकलेगा तब वहाँ की धूल तक उसे धिक्कारेगी । इससे बढ़कर उसकी पराजय तथा हमारी हुकूमतका प्रमाण और क्या होगा । ऐसे ही सुख-स्वप्नोंमें ठाकुर विक्रमसिंहने चुनावके

दिन बिताये ।

संकटके ऊपर बकाया लगानकी डिग्री हुई और उसने वह चुकादी । लगानको भविष्य में मनीआर्डरसे भेजनेका निश्चय किया और किसानोंमें उस बातका प्रचार किया कि लगान बसू-लयाबी की रसीद न देना ग़ैर कानूनी बात है, लगान ज़मींदारके पास मनीआर्डर द्वारा भेजना चाहिये ।

ठाकुर विक्रमसिंहने ओषधि तो दी थी रोग-निवारणके लिये--संकटको ठीक करनेके लिए—पर उसका असर हुआ उलटा । समझते थे कि पहले वारमें वह ढीला हो जायगा और उसकी अकड़ रफू हो जायगी ; पर दुबारा लगान देनेके कारण चोटिल साँपकी भाँति वह फुफकारा—और भी जोरोंसे ज़मींदारी प्रथाके विरुद्ध कहने-सुनने लगा । उधर ठाकुर विक्रमसिंह ने अपने दूसरे तीरको सँभाला ।

यों तो ठाकुर विक्रमसिंह और संकटप्रसादकी उसी दिनसे ठन गई थी जिस दिन उसने वोट देनेसे इनकार करनेके साथ ज़मींदारी प्रथापर भी हमला किया था । पर बकाया लगानकी डिग्रीकी अदायगीके बाद दोनों ओरसे पतंगोंके-से पेच पड़ गये थे । ठाकुर विक्रमसिंहकी इज्जतकी पतंग हुकूमत और रुपये की डोरीसे उड़ रही थी और संकटप्रसादकी पतंग सच्चाईकी डोरी से । अब तक दूरसे ही पतंगबाज़ी थी और अब पेच पड़ गये थे । एक झटकेमें ही संकटप्रसादकी पतंगको काटनेके लिये

विक्रमसिंहने अपनी डोरीमें रुपये और लाठीके जोरका माझा लगा रखा था और अवसर पाते ही एक ही झटकेमें संकटकी पतंग, 'ब काटाकी' ध्वनिसे काटनेके इच्छुक थे ।

संकट भी सतर्क था और अपने मित्रोंकी नज़रसे ओझल न होता था । वह जानता था कि गाँवका सबसे बड़ा हथियार है मार-पीट । देहातमें रहकर जो कमजोर हुआ, जिसने आत्म-रक्षाके लिये अपने प्राण हथेली पर न रखे, वह दबैल होकर रह सकता है । दूसरेका हित वह तभी कर सकता है, जब, तन, मन और धनमें से कमसे कम एकका वह प्रयोग कर सकता हो । गांवोंमें चर्चा थी कि संकटको 'काल मखरियाँ' घेरे फिरती हैं । ठाकुर विक्रमसिंह जैसा ज़मींदार हुकूमतमें कमी न आने देगा । संकटके कारण किमान उड़ण्ड होते चले जा रहे थे । बेगार और नज़र-भेंट देने में आनाकानी करने लगे थे । कमजोर और दबू किसान तक भूसा, घी और दूध देते समय कह देते कि लेलो भाई हम से हम तो किसी लायक नहीं; पर हुकूमत तो हम तब जानें जब संकटप्रसाद ब्राह्मणसे कुछ ले सको । सिपाही और ज़िलेदारोंसे ये समाचार ठाकुर विक्रमसिंहके कानों तक पहुँचते और जले पर नमकका काम करते । लम्बी साँस खींचकर वे खूनका-सा घूँट पीकर रह जाते । पेच तो पड़ा ही हुआ था । तैयारी भी काफ़ी थी । सब प्रबन्ध लैस था । बस अवसरकी प्रतीक्षा थी ।

“पड़ें सा.....के वेभावकी”—ही ध्वनिसे ठाकुर साहबके गुर्गे एक दिन संकटप्रसादपर टूट पड़े। किसीने हाथ पकड़े और किसीने पैर। चमर-छत्रमे उसकी पूजा कीगई। कोई कान खींचकर जूने जमाता तो कोई मूँछ पकड़ कर धौल रसीद करता और कोई व्यंग्यसे कहता—“कहो बेटा ! और करोगे ठाकुर साहबकी बुराई।” जितने मुँह उतनी ही बातें थीं। “दामादको दक्षिणा दो। कहो, है जमींदारीमें जोर”—आदि बातोंसे श्री उसे अपमानित किया गया।

गुद-गुदीसे सब न हँसें। कान खींचनेमे सब न चीखें; पर धधकते कोयलेके रखनेसे—विशेषकर अचानक रखनेसे—सभी तिलमिला उठेंगे। जूने पड़ने और गाली-गलौजसे अपमानित होनेके कारण संकटके शरीरही नहीं बरन् उसकी आत्मापर भी भकभकाती लोहेकी मेख रखदी गई। संकटकी आत्मा चीख उठी। उसने त्राहि-त्राहि नहीं कहा। डूबकर अथवा विप-पानकर उसने अपना अन्त नहीं किया बरन् बदलेकी भावना उसके रोम-रोममें दौड़ गई। उस पर बदला लेनेकी विजली गिरी। वह अपने आपको एक विचित्र प्राणी महसूस करने लगा—किमी दूसरे जगन् का प्राणी जिसकी मनोवृत्ति संसार के अन्य लोगों से भिन्न हो।

ठाकुर विक्रमसिंहकी खुशी का ठिकाना न था। उनके ख्याल से उनकी गोली निशानेपर पड़ी थी। अपने गुर्गोंको उन्होंने दावत दी; और मुकदमेबाजीके लिए पन्द्रह हजार रुपए अलग रख छोड़े। ठाकुर साहबतो मुकदमेके व्यूहमें संकटको घुसानाही चाहते

थे । हुक्मतकी रक्षाके लिए उन्होंने अपने सुख-उपवनके एक कांटे को उखाड़-सा डाला था । जड़ें खोखली कर दी गई थीं और मुक्तदमे के गवाहों की तैयारी पूरी होगई ।

पर विधाताकी गति निराली है । सरकारी अदालतमें संकटने कोई मुक्तदमा दायर नहीं किया । हाँ, उसने अपने मन की अदालत में मुक्तदमा दायर कर लिया था । ज़मींदारी प्रथाके विरुद्ध उसका आन्दोलन बन्द हो गया । पहाड़ी मार्ग से चलकर मैदानमें नदी कितनी शांत हो जाती है । संकटकी विचार-धारा भी वैसेही शान्त थी । पहले तो उसने दो मासका व्रत किया—बस एक बार दूध पीता, रोज़ चंडी-पाठ करता, देवीके मन्दिरमें घण्टों बैठा रहता । कुछ लोग समझते थे कि उसे उन्माद होगया है ।

संकटकी इस दशासे सभी खुश थे । ज़मींदारभी खुश था कि थोड़ेसेही जूतोंसे मनोकामना पूरी होगई और संकटभी बहुत प्रसन्न था, क्योंकि जंगलमें भले आदमीकी भाँति उसे प्रशस्त मार्ग मिल गया था । अर्जुनकी भाँति उसे भी अपना उद्देश्य-बिन्दु ही दृष्टिगोचर होरहा था । जब कभी ज़मींदारके आदमी उसे चिढ़ाते कि और जूते लोगे और किस भाव लोगे, तब उसकी चेष्टा उस चट्टानकी-सी होजाती जिससे फुंकारती हुई समुद्रकी लहरें टकराती हैं और कुछ न करके लौट जाती हैं । व्यंग्य वचन सुनकर संकट हँसीसे उत्तर देता—“अभी तो उस सौदाके दामभी नहीं पटे, पहले उन जूतोंके दाम चुका लेने दो ।” संकटकी शान्ति एक विकट तूफ़ानकी पूर्वाभास थी । लोगोंको यह थोड़े ही मालूम था कि

संकट वह इकाई है जो अपना पृथक् व्यक्तित्व रखता है, कांटेकी भाँति, जो दबाये जानेपर या तो टूट जाता है या फिर भीतर चुभ जाता है। उसके व्यक्तित्वमें स्वाभिमान और जीवन पर्यायवाची थे। बातके ऊपर मरने वाला, जीवनको खिलवाड़ समझनेवाला, हज़ारोंसे अकेला टकर लेने वाला संकट अपनी पाठ-पूजामें सोलह मास वैसे ही लगा रहा जैसे सूर्य प्रतिदिन उदय और अस्त होता है।

x

x

x

होलीके दिन दिवाकरने पीठ फेरी। संध्या आई। गाँवमें चहल-पहल थी। लड़के होली बढ़ानेमें जुटे थे। गरीबोंके घरसे तेलके पुजापेकी गन्ध आ रही थी। वर्षका अन्तिम दिन था। खेतोंमें नाज था। ढोलक और मजीरोंसे मुखरित होकर देहातकी भावना फूट-फूटकर निकल रही थी। होली थी। होलीके हर्षमें लोग अपने दुखोंको थोड़ी देरके लिए भूल रहे थे, उस दुखीकी भाँति जो शराब और पैमानेको देखकर आह्लादित हो जाता है और एक प्यालेमें गम गलत करता है।

ठाकुर विक्रमसिंहके यहाँ नाच-तमाशेका रंग जम रहा था। भङ्ग अलग घुट रही थी तो कढ़ाव अलग चढ़ रहे थे। साज सँभालनेकी ध्वनि पासके कमरोंसे आ रही थी। नर्तकियाँ शृङ्गार कर रही थीं।

और संकट ? संकट भी सँभल रहा था नाचके लिए। नाचके लिए ? हाँ, नाचके लिए—ताण्डव नाचके लिए। उसने अपनी गड़ासी पत्थरपर पैनी की। उसे चूमा। उसे लेकर वह

चला। लोगोंने पूछा, “कहाँ जाते हो?” बोला, “कुरमीका सिर काटने।” सिर काटनेवाला ढोल बजाकर कहता नहीं, इसलिए, संकटकी बातको लोगोंने पागलका प्रलाप समझा। पर संकट बाजकी भाँति अपने शिकारपर दूट पड़ा। बगीचीमें ठाकुर विक्रमसिंह संध्या करने बैठे ही थे कि इतनेमें ही उनकी जीवन-संध्याका पैगाम लेकर संकट आ गया और दूरसे ही उसने ललकारा—“सँभलजा, तेरी जूतियोंका दाम भुगताने आया हूँ।”

विक्रमसिंहकी कमजोर आत्मा—अत्याचार और पापसे पली आत्मा—घबरा गई। एकही वारमें विक्रमसिंहका सिर धड़से जुदा हो गया। खूनके फव्वारोंसे ज़मीन तर हो गई। संकट छ़ातीपर बैठ गया। गरम खूनसे उसने माथे और भुज-दण्डोंपर तिलक लगाये। कटे सिरको उठाकर धड़पर रखा, जीभको खींचकर काटा और बगीचेकी भगवतीपर चढ़ाया। साड़-साड़की चोटसे उसने शवसे दोनों बाहें काटीं। अपनी जेबें माँसके टुकड़ोंसे भरीं। सिर उठाकर उसने होलीपर चढ़ाया। अपने खेतोंपर गया और प्रत्येक खेतमें उसने माँसके टुकड़े गाड़े और प्रार्थनाकी कि ‘हे धरती माता, तेरी ही छ़ातीपर मेरा अपमान हुआ था और अब तुझे मैं महिपासुरके माँसके टुकड़े भेंट कर रहा हूँ। आजका दर्शन कदाचित् अन्तिम दर्शन हो।’

अगले दिन गड़ासी और कटी भुजाको लेकर संकट प्रसन्न वदन अदालतमें हाज़िर होगया।



शीर्षकहीन कहानी



शीश-रहित रुण्ड, त्याग-रहित कीर्ति और शीर्षकहीन कहानी सजीव नहीं कहे जाते। और फिर शीर्षकहीन कहानी कैसी ? कहानीका कुछ-न-कुछ शीर्षक तो होना ही चाहिये। न होनेपर कोई उचित शीर्षक गढ़ लेना चाहिये, अन्यथा शीर्षकहीन कहानीकी दशा नाम-रहित मनुष्यके समान होती है। शीर्षकका काम नामकरणके अतिरिक्त किसी भावव्यंजना अथवा किसी विशेष प्रभावकी महत्ताको प्रकट करना है। शीर्षक तो किसी लेख—विशेषकर कहानी—के लिये वह मित्रनातीस है, जो पाठकोंके मनको बरबस अपनी ओर खींच लेता है। चुभते और उचित शीर्षकपर नज़र पड़ते ही पढ़नेवालेका मन बिंधा रह जाता है। लेखकी पहली चोट और प्रथम आकर्षण शीर्षकमें ही है।

यह बात नहीं कि हम शीर्षकके क्रायल न हों। बेहद क्रायल हैं, और इस कहानीके शीर्षकके लिए एक सप्ताहसे सोच रहे हैं, 'कफन की कील', 'सोज़', 'जीवन-पथ', 'अनिल-किरण', 'खूनकी होली' आदि अनेक शीर्षक स्मरण हो आये; पर दिल किसीसे न भरा,

और तब यही ठीक समझा कि एक कहानी शीर्षकहीन ही सही । शुभ और चुभता नाम न हो, तो बदनाम होना तो किसी प्रकार भी उचित नहीं । और कहानी तो एक घटना है—सामाजिक और वैयक्तिक घात-प्रतिघात-जन्य भावनाओंका एक शब्द-चित्र, मनोविकारोंका चढ़ाव-उतार—वासनाओं और आदर्शके संघर्षका लेखनी-तूलिकासे लिखा हुआ एक सजीव चित्र । तो फिर न हो नाम—शीर्षक । कुछ चीज चाहिये ।

+ + + +

गंगाकी सखी-सहेलियोंमें—सहायक नदियोंमें—यो तो एकसे एक बढ़कर और मदमाती हैं । चढ़ने पर—भरी जवानी—बरसातमें उनके आनन्दविभोर—उल्लास, नखशिख-सौन्दर्य, आकर्षक और राजव ढानेवाली चंचलताकी कौन प्रशंसा करे ? यमुनाकी ब्रजकेलियाँ, सरयूकी अठखेलियाँ, सरस्वतीकी अगोचरता और गदकारी सोनभद्रका फहराता हुआ सुनहरा चीर देखते ही बनता है; पर रामगंगा का भृकुटी-विलास और भावभंगी बेजोड़ ही हैं । गंगा महारानीकी किसी भी यौवन-मदमाती सखीका यह ताव नहीं कि रिझानेकी किसी भी कलामें रामगंगाको हरा सके । गातकी मझोली, भावकी गम्भीर रामगंगाकी छटा को बरेली, मुरादाबाद, शाहजहाँपुर, फर्रुखाबाद और हरदोईके जिलोंमें देखिये । हरित तृणोंकी झालरदार साड़ी पहने, उभरे गातसे, फुदकती और मचलती, मुड़-मुड़कर देखती और यौवन-बाढ़में अनेक मस्त वृत्तोंको बहाती रामगंगा एक विचित्र ही नदी

है। अनेक मकानोंको अपने गर्भमें रखती—भोजन-सा करती—मीलों तक खेतोंको जलमग्न करती, मानवी नई-नवेलियोंसे होड़ लगाकर वह गंगासे मिलने बढ़ती है। किसी-किसी गाँवके पास तो उसे अपने पीहरकी याद आ जाती है, और लौट-लौटकर चक्कर लगाकर—घायल साँपकी भाँति पलटा खाकर—कुछ ढूँढ़ती-सी वह अपना मार्ग बनाती और गाँव को प्रायद्वीप बना डालती है।

ऐसे ही प्रायद्वीपी एक गाँव कटोरा में रामगंगाके यौवनको लजानेवाली चमेली नामकी एक चमार युवती रहती है। गाँवसे कुछ हटकर रामगंगाकी ओरको उसकी भोंपड़ी है। प्रतिवर्ष अपने यौवन-मदमें कुछ बौराई-सी रामगंगा चमेलीके भोंपड़ीकी ओरको बढ़नेकी कोशिश करती है। गजों लम्बी दरारें फटती हैं, और धम-फिच्च करके बैठ जाती हैं। डाहसे उधर वह बढ़ती है, अथवा रूप-राशिकी प्रतिमा—चमेली—की भोंपड़ीसे मस्तक टेकनेको, सो कहना कठिन है। वैसे तो उस युवतीके पैरके धोवनसे रामगंगा अपने मस्तकको गौरवान्वित करती है, क्योंकि प्रतिदिन दो बार अपनी गगरियाँ भरने वह रामगंगा-तटपर आती है।

अपने उतावलेपनमें जब रामगंगा भोंपड़ीकी ओर बढ़नेको जोर लगाती है, तब युवती और उसका पति तोता चमार अपनी लट्टू-पट्टू उठाकर गाँवकी ओरको थोड़ा-सा खिसक जाते हैं। भोंपड़ीको खिसकानेमें कोई विशेष देर नहीं लगती। पति-पत्नी मिलकर टटियाँ उठाकर रख आते हैं। उस भोंपड़ीमें सामान ही कितना है। बस, टूटे-फूटे बर्तन-भाँड़े और दो

खाटें। हाँ, चमेलीकी बड़ी पूँजी है चक्की। उसे वह बड़ी सावधानीसे उठाती है। उसीके बूते पिसाई करके वह चार दाने कमा लेती है। उसे आये अभी तीन वर्ष ही हुए हैं, और अपने वैवाहिक जीवनके प्रथम फल अपनी डेढ़ वर्षकी बिटिया मुन्नीको देखकर वह निहाल हो जाती है, और पहली सन्तानकी माँ होनेके कारण वह अपनी बालिकाके लिए कुछ अधिक सतर्क रहती है। मेहसे भोंपड़ी चूने लगी कि चमेलीकी आँखें चकित हिरनीकी भाँति उसपर दौड़ गईं। बरसातमें तोता और चमेली वैसे ही परेशान रहते हैं कि कहीं रातमें ही राम-गंगामें बाढ़ न आ जाय। चमेलीको अपनी बालिकाके कारण ये आशंकाएँ बहुत सताती हैं। कपड़ोंकी कमीके कारण भीगे कपड़ोंसे ही गुजारा करना पड़ता है। जब भोंपड़ी चूती है और गीले कण्डोंसे उसे रोटी करनी पड़ती है, तब वह भल्लाकर नदीको कोसने लगती है, और क्रोधकी लाली उसके यौवनकी आभाको उसके कपोलोंपर और भी दमका देती है। तोता उसकी आकृतिपर सूर्य और चन्द्रमाकी झलक देखकर मुग्ध हो जाता है, और मुन्नीको गुदगुदाकर हँसा देता है। उसकी किलकारी और चार दाँत देखकर चमेलीका क्रोध भाग जाता है। बरसातमें छाया और धूप एक दूसरेका पीछा करती खेतोंमें दीख पड़ती हैं, वैसे ही चमेली रोटीको भाड़कर क्रोध और आत्मतोषसे कहती है—“भगवान् ने यह दुःख खेलनेको ही तो हमें चमार बनाया, नहीं तो क्या मैं अपनी बिटिया मुन्नीको

खिलेदारकी बिटियाकी भोंति न सजाती । ईश्वरकी मर्जी होती, तो क्या हमें कहीं कच्चा मकान बनानेको चार हाथ ठौर न मिलजाता ।” घबराकर बच्चा अपनी माके अञ्चलमें जा छिपता है, कष्टों और दुःखोंसे घबराकर भोले और भले मनुष्य दैवी शक्तिकी शरण लेते हैं । वस, इसी दैवी सहारे, भविष्यकी आशा और युवावस्थाकी अलमस्तीसे, तोता और चमेलीने मुन्नी-का मुँह देख-देखकर बरसातकी यातनाएँ भोग डालीं ।

+ + + +

“आसपासके गाँवोंसे छै-सात चमारोंको पकड़ लाओ और बैठककी सफाई तीन दिनके भीतर हो जाय । सुनता है, मेकुआ कि नहीं ?”

“मालिक, जूड़ी-बुखारके मारे चमार आनेसे इनकार करते हैं ।”

“उल्लूका पट्टा कहींका । तेरी और चमारोंकी खालें खिचवा लूँगा, जो काम न हुआ ।”

“हज़ूर, होगा । मालिकका काम तो होगा ही । मैंने वही बात कही थी, जो चमारोंने मुझसे कही थी । मालिककी हुकम-उदूली कैसे होगी ।”

“कौन-से चमारने आनेसे इनकार किया ? बता ! अभी बुलवाकर उसके सौ जूते लगवाऊँ और गाँवसे निकाल दूँ । इन कमीनोंपर जितनी मेहरवानी करो, उतने ही सिरपर चढ़े आते हैं । समझते ही नहीं हरामखोर कि हुकूमतके क्या मानी हैं ।”

“नहीं अन्नदाता, उन्होंने आनेसे इनकार नहीं किया, वरन् बुखारकी कमजोरीके कारण तीन दिनके भीतर सफाई और लिपाई-पुताई पूरी करनेसे मजबूरी बताई थी ।”

“पहले तेरी ही शामत आना चाहती है । यह बता, किसने मजबूरी जाहिर की ।”

“मालिक, आपके हलकेमें चमारोंके केवल चार घर हैं, जिनमें गाँवका चमार तोता ही काम करने लायक है । बाक़ी दो चमार शहरमें काम करते हैं । हाँ, उनकी औरतें गाँवमें रहती हैं । सो इस सालकी बीमारीमें सभी गिर गई थीं ।”

“हम नहीं जानते । तीन दिनके भीतर सब काम पूरा हो । दिवालीके दिन हमारे यहाँ दारोगाजी आवेंगे । कुछ नाच-गाना भी होगा ।”

उपर्युक्त बातें हुईं ज़िलेदार बहादुरसिंह और रियासतके सिपाही मैकूमों । ज़िलेदार बहादुरसिंह रियासत जैजैमऊका एक ज़िलेदार है । वेतन है दस रुपया मासिक और खुराक । अपने हलकेमें उसका रोब रियासतके मालिक राजा साहबसे अधिक है । उसके विरुद्ध कुछ करनेकी ताब गाँववालोंमें नहीं । गाँववालोंका ऐसा कोई संगठन नहीं, जो सामूहिक विरोध कर सके । दो-चारने उसके खिलाफ़ रियासतमें अर्जियाँ दीं, तो जवाब माँगा गया ज़िलेदारसे । ज़िलेदारने पहले तो शिकायत करनेवालोंको धमकाया । फिर उनके जानवर पकड़वाकर बाड़ेमें कर दिये और रियासतको जवाब लिख दिया कि वे बड़े ही सरकश

किसान हैं। रियासतकी हुकूमत नहीं मानते; मुख्तारिफत करते हैं। और पिछले चुनावमें रियासतकी मज्जीके खिलाफ वोट दिये थे। बस, इतनी रिपोर्टसे रियासतके मालिक भी ज़िलेदारकी बात मान लेते हैं। यही नही दो-चार सिर उठाने वालोंको उसने बेदखल भी करा दिया था। फलस्वरूप इलाक़ेमें बहादुरसिंहका आतंक है। वेतन है दस रुपया और खुराक; पर दस रुपयेमें तो ज़ोनी वाकर ह्विस्कीकी दो बोतलें भी नहीं आतीं, जिन्हें वह और उसके दोस्त तीन दिनमें पी डालते हैं। हाँ, चार गाय और तीन भैंसें छुटी किसानोंके खेतोंमें चरती हैं। उनके दूध, दही और घीसे गुज़ारा हो जाता है। उसके इलाक़ेमें पाँच सौ हल हैं, और फ़ी-हल दो रुपया वार्षिक नज़राना तो उसका दफ़ है, जो ज़रूर वसूल होगा, चाहे रियासतका लगान वसूल न हो। कई सौ बीघे खेती भी होती है, जिसकी जुताई और कटाई सब बेगार और हुकूमतमें। इलाक़ेका प्रत्येक थानेदार उसकी उँगलीपर नाचता है। जब कभी थानेदारको किसी गवाहकी ज़रूरत होती है, तब कौरन ठाकुर बहादुरसिंहको ख़बर कर दी जाती है, और गवाह तैयार हो जाते हैं। तीज-त्यौहारपर किसानोंके बच्चे चाहे तरसते रहें; पर थानेदारको दूध-दही पहुँचेगा ही, और दो-चार गाड़ी ईंधन तो राजा साहबकी आज्ञासे भी वहाँ पहुँच जाता है। यह दूसरी बात है कि राजा साहब उसे कुत्ता समझकर ही ऐसे जूठनके-से कौर फेंक देते हैं; पर देहातकी असहाय जनताके

लिये पुलिस सर्वशक्तिशाली है।

+ + + +

दीपावलीकी संध्या है। अनेक तूलिका-रश्मियोंसे विश्वको स्पर्श करके, अन्धकारको चार्ज देकर, विराट् तेजपुञ्ज ओभल हो गया। ऊपर आकाशमें प्रकृतिने नक्षत्र-रत्नोंका थाल सजाया, प्रकृतिसुन्दरीकी अर्चनाके लिए और कटौराके घरोंमें दीये सँजोये गये—लक्ष्मीकी पूजाके लिए। होली, दिवाली तथा अन्य त्यौहार गरीबोंके पीड़ित हृदयोंमें कुछ चैन-सा पहुँचाते हैं—प्रातःकालके समीरके समान, जब यक्ष्मा-पीड़ित व्यक्तिको कुछ चैन मिलता है। स्त्रियों और बताशोंसे बच्चोंको प्रसन्न किया गया; पर कटौरामें एक घर था, जिसमें अभी तक कोई दिया नहीं सँजोया गया था। उस भोंपड़ीकी मालिकिन चमेली किस बूते पर दीपक सँजोती, जब उसकी भोंपड़ी और हृदयका दीपक—उसका पति—तोता रात होने पर भी जिलेदारकी आज्ञा से घास छील रहा था। लगातार दो दिन चौपाल की लीपा-पोती करनेसे उसका ज्वरसे निर्बल शरीर फिर ज्वरग्रस्त हो गया था; पर जिलेदार की कड़ी ताकीद थी कि अगले दिन प्रातः काल जिलेदार और थानेदारके घोड़ोंके लिए घास तैयार मिले, और चमेलीको दो धड़ी आटा पीसकर देना था, क्योंकि दस-बीस आदमियों का कलेऊ था।

दिन-भरकी लीपा-पोतीके कारण, जिसमें रोगी पतिका हाथ बटानेमें चमेली का स्वस्थ शरीर थककर चूर हो गया था,

उसने अपनी बच्चीको चुप रखनेके लिये अफीम खिलादी थी । रातको दो धड़ीकी पिसाई और पति द्वारा घासकी छिलाईकी कल्पना से चमेलीके हृदय में रोष और ग्लानिका तूफान उठ रहा था । वह अपने भाग्यको कोस रही थी कि उसके पास रुपया होता, तो किसी शहर में जाकर रहती और सुखसे अपने इच्छानुसार अपना काम करती । उसके मनकी धूमिल ज्योतिमें कभी-कभी ज्ञान-प्रकाशकी रेखा ऐसे चमक जाती जैसे बदलीकी रातमें बिजली, और तब वह कहने लगती कि आखिर ज़िलेदार की विभूतिका स्रोत क्या है । लगातार खून-पसीना एक करके वह और उसका पति काम करते रहे, और मजदूरी अथवा उसका कोई बदला नहीं मिला—एक प्रकारसे बलपूर्वक उनसे उनकी रोटी छीनी गई । कहीं और जगह मजदूरीकी होती, तो उस कठिन परिश्रमके उन्हें चार रुपये तो मिले होते । फिर थोड़ी देर बाद उसे खयाल आता अपनी जातका । चमार होने का ही तो उसे दण्ड मिलता है ; पर दूसरे ही क्षण उसे गरीब ब्राह्मण और क्षत्रिय लोगोंकी बेबसी का स्मरणकर इसी नतीजे पर आना पड़ता कि ज़िलेदारके वैभवका कारण है—उसका जुल्म और उसके अधिकार, जिनके बलपर वह औरोंकी सम्पत्ति—मजदूरी, दूध, दही और शाक-भाजी—हरण करता है । पर उसका ज्ञान-प्रकाश क्षणिक ही होता—विद्युतकी चमकके समान और शीघ्र ही उसकी असहाय परिस्थिति रूपी बदली घिर आती ।

गाड़ीमें जुते बैलकी भाँति उसे अपनी बेबसीके पथपर चलना ही पड़ता ।

सायंकालको घर आकर चमेलीने अपनी भोंपड़ीको बुहारनेका प्रयत्न किया; पर फूल-सी अपनी बिटियाकी क्लान्त आकृतिसे उसका दिल भर आया । अफीमके नशेकी खुशकीसे नन्हीं-सी बच्चीके होंठ फट गये थे । बारह घन्टे बाद उसका कुलबुलाना देखकर उसने लपककर उसे छातीसे लगा लिया । बच्चीके दुग्ध-पानसे उसके व्यथित हृदयकी कसक कुछ निकली । रुका हुआ मातृ-प्रेम श्वेत तरल रूपमें बच्चीके मुँहमें पड़ा, और थोड़ी देरके लिये वह दिन-भरका दुःख भूल गई । स्नेह-मदने उसे ज्ञानशून्य-सा कर दिया और थपकी दे-देकर वह लोरी देने लगी—‘ढाकके दौना मगदके लड्डू जिमैया तौ जें गये मेई मुन्नी गई सोइ । नींद तोय बेचि आऊँ जो कोई लेइ ।’

थपकियाँ देकर, लोरी सुनाकर, दूध पिलाकर, अपनी मुन्नीको सुलाकर और प्रेम-दृष्टिसे उसे निहारकर चमेली कराह उठी । फिर उसने दिवालीके दीयोंकी ओर खयाल किया । दीये थे, पर तेल न था; तेल लेने कौन तेलीके यहाँ जाता ? मिट्टीके तेलके लैम्पका दिवालीको कोई महत्व नहीं । रोजानाकी भाँति चमेलीने वही लैम्प जलाया । फिर उसके लिए वह दिवाली कौन-से सुखद स्वप्न लाई थी ! उस दिन तो वह अपने आदमी के साथ बुरी तरह जुटी रही थी । दम मारनेकी भी फुर्सत न थी । स्वयं अपनी बच्चीको दूध तक न पिला सकी थी । ज़िले-

दारकी चौपालकी लिपाई-पुताईके कारण अपनी छोटी-सी भोंपड़ीकी सफाई भी न कर सकी थी। चौपालके पास ज़िलेदारके बच्चोंको खेलता देख, ज़िलेदारकी पत्नी ठकुरानीको आभूषण पहने लोगोंको अपनी बच्चीके लिए डाक्टरसे दवा लानेका आदेश देते सुन, चमेलीको अपनी बेबसीपर रोना आगया था। दिवालीके दिन शायद जेलमें कैदियोंको भी उतना काम न करना पड़ा हो, जितना चमेली और तोताको। तो फिर वह किस उत्साहसे दिवाली मनाती। तेल लानेकी उसमें ताब न थी। बस, बच्चीको सुलाकर, पीसनेको चक्कीके पास सँभालकर, रखकर और भोंपड़ीके किवाड़ बन्दकर वह नदीके किनारेकी ओर बढ़ी।

भोंपड़ीसे आध मीलकी दूरीपर आग जलती दिखाई पड़ी। कितनी सुहावनी थी वह आग, उस आँधरेमें। समुद्रमें छोटा-सा टापू जैसे शोभित होता है, वैसेही आँधरेमें वह क्षीण तेजपुञ्ज अग्निकाण्ड-सा दिखाई पड़ा। उसीके सहारे वह वहाँ पहुँची। देखा, तो तोता कराह-कराहकर आगकी रोशनीमें ढीले-ढाले हाथोंसे खुरपी चला रहा था। ज्वरके वेगके कारण उसके हाथ खुरपीमें वह जोर न दे सकते, जिससे दूबकी जड़ें पूरी पूरी कट जातीं। एक घिस्सेके बजाय उसे तीन घिस्से लगाने पड़ते थे। ओछे सवारको जैसे घोड़ा पहचान लेता है, उसी प्रकार कमजोर हाथोंको मानो खुरपी पहचान गई थी। वह खुरपी, जो उसके अङ्गका एक भाग बन गई थी, और जिससे वह बात-

की बातमें डलियों घास छील डालता था, वही खुरपी उस समय ढीली पड़ रही थी ।

चमेलीको पास खड़े देखकर तोताकी हिम्मत और टूट गई । वह नहीं चाहता था कि अपनी प्यारी पत्नीको किसी प्रकार अपने कष्टसे दुखी करे । दिन-भरकी मरी-खपी वह वैसे ही थी, और तिसपर उसे पीसना था । उसे देखकर तोताकी आँखें ऐसे डब-डबा आईं, जैसे रुआसे बच्चेकी आँखें माको देखकर छलछला जाती हैं, और हूक मारकर वह रोने लगता है । घास छीलना बन्द करके तोता आगके निकट आकर आग तापने लगा । अब-रुद्ध कण्ठको खोंसकर उसने साफ किया, और आँखें नीची करके आँसू छिपानेकी गर्जसे उसने कहा—“तू बड़ी पगली है । यहाँ काहे आई ? मैं तो बीमार हूँ ही ; तू भी बीमार पड़ना चाहती है ?”

चमेली—“हाँ, मैं पगली हूँ, इसीलिए आई हूँ । मेरे जीसे पूछो कि मुझपर क्या बीत रही है । दो महीनेकी माँदगीसे उठे थे । अभी दालका पानी पीते थे कि कढ़ीखाये ज़िलेदारकी लीपा-पोती आ गई और तुम फिर बीमार पड़ गये, और बुखार-में अब रातको घास छील रहे हो । मैं पगली हूँ कि तुम पागल हो ?”

तोता—“पगला तो हमारा भाग्य है ; पर ज़िलेदार क़साई है । घास न पहुँची, तो फिर ख़ैर नहीं । बोटी-बोटी उड़ा देगा ।”

चमेली—“कसाई सही ; पर है तो आदमी । तुम्हारी हालतपर उसे ज़रा भी तरस नहीं आयगा ? जानता तो है कि तुम बीमार थे, और आज फिर तुम्हें बुखार आ गया है । मैं जाकर ठकुरानीसे कह दूँगी कि मेरा आदमी बीमार है, और फिर तड़के ही मैं घास छील डालूँगी ।”

तोता—“तू इन ज़िलेदारोंको नहीं जानती । कलजुगके दूत हैं । ये सूरत-शक्तसे आदमी हैं । वेश-भूषासे बड़े भले भी दिखाई देते हैं ; पर इनकी असलियत कुछ और ही है । कसाई इनसे कहीं अच्छे होते हैं ।

चमेली—“तुम तो बहस करने लगे । मैं जानती हूँ कि ये रेत-रेतकर—तंग करके—मारते हैं ; पर हैं तो ये बाल-बच्चेदार ।”

तोता—“बाल-बच्चेदार ? हाँ, हैं ; पर उससे क्या ? हम भी बाल-बच्चेदार हैं ; पर खुरपीके बेंटके प्रति हमारा क्या व्यवहार है ? वह कामकी चीज़ है ; पर काम न निकलनेपर हम उसे फेंक देते हैं ।”

चमेली—“तो हम और हमारी बच्ची बेजान खुरपीके बेंटके समान हैं ?”

तोता—“और क्या ! मैं यही देख रहा हूँ । ये ज़मींदार और ज़िलेदार हमें अपने मतलबकी चीज़ समझते हैं, और मतलब निकल जानेपर खुरपीके बेंटकी भाँति फेंक देते हैं ।”

चमेली—“मैं कुछ नहीं मानती । चलो, घर चलो और आराम करो ।”

तोता—“अभी लगालगीमें मैं घास छील लूँगा । खटिया-पर गिरकर फिर मुझसे नहीं उठा जायगा । तू चल । घड़ी आध घड़ीमें इस आगके सहारे मैं घास छील लूँगा ।”

चमेली (तोताका हाथ पकड़कर)—“ना, मैं नहीं मानूँगी । चाहे कुछ हो, चलो । और तबीयत खराब हो गई, तो मुझे ही भुगतना पड़ेगा । ज़िलेदारसे निहोरे-पाते करके बचा लूँगी ।”

दोनों प्राणी घर आये । गरम पानी करके चमेलीने तोताको पिलाया और फटे-पुराने कपड़े उढ़ाकर लिटा दिया । भोंपड़ीमें दिवालीके दिये न थे, वरन् रोज़का मिट्टीवाला लैम्प ।

थके-माँदे शरीरमें नींदका नशा आ जानेसे रात ढलते फिर आँख खुलनेकी आशा न थी और पीसनेका ढेर रखा था । तोता घास भी न छील पाया था, और प्रातःकाल गहरी ओसमें घास छीलनेका सवाल ही न था, इसलिए आधा काम—पिसाई—करना ही था, इसलिए चमेलीने अपनी चक्की चलाई । दो टोकनोंमें गेहूँ भरे रखे थे । चक्कीमें कौर डालकर उसने पीसना प्रारम्भ किया । मनोव्यथाकी उपेक्षा करनेके लिए डढ़ेको दाँएँ और बाँएँ हाथसे बारी-बारी से पकड़कर चक्की चलाते हुए उसने गाया:—

‘जंजारी जियरा’

धन्धौ करत जनम योई गयो ।’

ऊपर आकाशका पाट अनेक नक्षत्रोंसे जटित संसारकी चक्की अविचल गतिसे चला रहा था । कटौराकी दीपावलीके दीये अभी

बुझे नहीं थे । लोगोंने खील-बताशे अभी चब नहीं पाये थे ।

x

x

x

ज़िलेदारकी चौपालकी धज निराली थी । चौपालके वृत्ताकार कमरेमें दीवारसे कुछ हटकर गलीचे बिछे थे । बीचके गलीचेपर रेशमी गिलाफ चढ़े दो तकिये थे । वे मसनद ज़िलेदार और दारोगा साहबके लिये थे । उस गलीचेके समकोण और भी कुछ साधारण गलीचे थे, जिनपर और लोग बैठे थे । छतके बीचों बीच फानूस लटक रहा था, जिसमें एक दर्जनके क़रीब मोमबत्तियाँ जल रही थीं । उसके बाहर कुछ परवाने भीतर घुसनेको तड़प रहे थे । पान, सुपारी और इत्रदान मुख्य गलीचेपर रखे थे । चौपालके बाहर मैले-कुचैले कपड़ोंमें सिमटे-सिकुड़े लोग कनखियोंसे भीतर देख रहे थे । किसानोंके सूखे और तेजहीन कपोलोंपर तमाशेकी आकांक्षासे आनन्दकी रेखाएँ अंकित हो रही थीं ।

पतली दुलाई ओढ़े, टुपल्ली टोपी पहने, सुरमा लगाये, मूँछें टेकुये-सी खड़ी किये, मन्द गतिसे ज़िलेदार बहादुरसिंह आये, और साथमें थे दारोगाजी । मसनदपर जमते ही क़र्शी सामने रखी गई । जॉनी वाकरकी दो बोतलें, सोडा और पैमाने भी आये, और आये शीघ्र ही बाहरसे मीरासी, तबलची और नवयौवना मंगलामुखी पिशवाज और भीने वस्त्र पहने । आते ही पान-पीक-रंजित अधरों को खोलकर कुन्दकली-अवलि-से दाँत दिखाकर अर्ध-मुसकानसे जिसके कपोलों पर यौवनको रेखा

दीप्त हो गई, उसने ज़िलेदारको कर्शी सलाम झुकाया । धुआँके कशको खींचकर, निगाली को धीरेसे हटाकर, मंगलामुखीके स्नेहभरे अभिवादनसे निहाल होकर, नेह प्यासी आँखोंसे देखकर कुछ हँसकर, ज़िलेदार साहबने तनक सिर हिलाकर, अभिवादन स्वीकार किया ।

जौनी वाकरकी बोलत खुली—घञ्च ; और गलेके नीचे वह पेय उतरा गटर-गटर । आँखोंमें सुरूर, चेहरोंपर नूर और सामने सब सोज-समान । बस, आज्ञा हुई कि मुजरा जमे । पहले नाचका हुक्म हुआ और परमलू नाचका । उस्तादजीने पलथी मारे बैठकर हाथसे गति करते हुए बोल कहे—‘तक तक दिग तक दिग गदि कत जगत कूक तक तक दिग तिं जय तग तराग तग धिलांग धिधि धिन भूभन नाड़ धिग भूनन डान थू कतत कतत कत गिदिनाड़ ता धा ।’ ता धाकी समाप्तिपर चौपालकी धूमिल ज्योतिमें बिजली-सी चमकी और विद्युत गतिसे नर्तकीने न-मालूम कितने चक्कर काटे और एकदम ऐसे रुकी कि उसकी भावभंगी और रुकनेसे ता धा का ब्रेक लग गया । ‘वाह-वाह’ ‘खूब-खूब’ की ध्वनि और सिर झुकाकर प्रशंसा स्वीकृतिके उपरान्त गानेका नम्बर आया । तबला ठनका ‘धा धी धीना, नाधी धीना, नातीतीना, नाधीधीना’, और हारमोनियमपर उँगलियाँ चलीं स ग म प नि ध नि स स नि ध प म ग रे स और अधखुले नेत्रों, गोरी उँगलियोंसे लटको सँभालकर तिरछी चितवन और हाथको आगे बढ़ाकर उसने खम्माच रागमें गाया:—

‘राजाजानी मारो ना नयनवाँके तीर ।’

वाह-वाह । बढ़ी रहो । क्या कहने ! शराब और गानेमें
ब्राह्म-मुहूर्त हो गया ।

×

×

×

अगले दिन प्रातःकाल ज़िलेदारकी यात्राकी तैयारी हुई,
और घोड़ा लाया गया । घोड़ेका पेट न भरा था । देखते ही
ज़िलेदार आगबबूला हो गया, और शीघ्रही सिपाहीकी पेशीहुई ।

“क्यों बे उल्लूके पट्टे ? तेरी.....यह बता कि घोड़ा क्यों
भूखा रहा ?”

सिपाही (सहमकर)—“मालिक घास नहीं आई ।”

ज़िले०—“क्यों नहीं आई, जब हमने हुक्म दिया था ।”

सिपाही—हुजूर, तोता चमार कह गया था कि रातके नौ
बजे तक घास दे जाऊँगा ; पर वह लाया ही नहीं । सवेरे
उसके घर जाकर देखा, तो थोड़ी-सी घास थी, सो लेआया ।
पूछा तो उसकी औरतने कहा कि कल रातसे ही उसे बुखार
चढ़ा है ।”

ज़िले० (क्रुद्ध होकर)—“पकड़ लाओ और...और लगाओ
हमारे सामने पचास जूते ।”

चार नौकर भागते गये और तोताको घसीटते हुए ले आये ।
बुखारसे बेदम था । बोल भी न सकता था । क्षमा याचनाके
लिए ऊपर हाथ उठाकर कुछ कहना ही चाहता था कि लगे
पड़ने लूते । दस-पाँच जूतोंमें ही उसका भुरकुस निकल गया ।

बेहोश होकर वह गिर पड़ा था ; पर जूते अभी उसपर बरस ही रहे थे । एक नौकर तो हाथमें लगे गन्नेसे तोताको धुन रहा था । ठीक उसी समय सामनेसे चमेली अपनी बच्चीको गोदमें लिये, बरकी-सी काटी, उधर को भागी चली आ रही थी और चिल्ला रही थी कि 'बचैयौ मेरे आदमीको, उन्हें बुखार है ।'

किन्तु जूते और गन्नेसे मानवी मूर्ति अथवा बेबसीके पुतले को ठीक किया जा रहा था । घबराकर चमेली तोताके ऊपर गिरी । उसकी बच्ची सहमकर चीखकर और गोदसे आँखें ऊपर करके देखने लगी । उन पवित्र आँखोंके आकर्षणसे भी वे संग-दिल नहीं पसीजे । कड़ककर ज़िलेदारने कहा—“लगे इस... बच्चीके भी । आई है बचाने अब । घास क्यों नहीं छिलवाई थी ? जानती नहीं थी कि तेरे बाप—घोड़ेको सफरमें जाना है ।”

बस, गन्ने और जूते चमेलीपर भी पड़े । अपने जीवनमें भूखे, रोगी और बेहोश पतिको बचानेमें उस पर मार उसी दिन पड़ी । लड़की और पतिके बचाने और मछलीकी भाँति तड़पने में उसका अंचल अस्तव्यस्त था । क्रोध और घबराहटमें उसके मुँहसे केवल यही निकला—‘भगवान् ! नाश करे कुसूरवारका ...’ वह कुछ और कहना चाहती थी कि एक गन्ना उसकी बच्ची की नाकके बीचमें लगा । चिल्लाकर वह बेहोश हो गई । नाकसे खूनका फव्वारा चला, और उसे देखकर ज़िलेदार और नौकरों की अकल चकराई ।

चमेली सिर धुन रही थी । छातीसे लगाकर उसे दूध पिलानेकी कोशिश कर रही थी । पर उसका अब तक पिलाया हुआ दूध—रक्त—नाकके नथनोंसे रक्तके रूपमें उसकी छातीसे लगकर स्तनों द्वारा भीतर प्रवेश न पाकर—नीचेको बह रहा था ।

+ + + +

भोंपड़ीमें तोता कराह रहा था, और उसकी बच्चीको कफनमें लपेटा जा रहा था । ज़िलेदारके आदमी वहीं तैनात थे, और वे तब तक वहाँसे नहीं हटे, जब तक नन्हें-सी लाशको रामगंगाके सुपुर्द नहीं कर दिया गया ।

—————

‘ऐमुन तैमुन’ और ‘तिरिकिटता’



सोलह और पचीस साल की उमर 'गधा-पचीसी उमर' कही जाती है। यह समय बढ़वार का होता है। इस काल में अंग-प्रत्यंग पुष्ट करके प्रकृति अपने मानवी पुतले को संसार-संग्रामके लिए तैयार करती है। एक प्रकार से इस समय शरीर में उफान-सा आता है। गधा-पचीसी उमर वाला युवक भी अपनेको आवश्यकतासे अधिक होनहार, योग्य और बलशाली समझने लगता है। और जब तक शरीरका उफान कम नहीं होजाता, बढ़वार रुक नहीं जाती और संसारकी चिन्ताओंका भूत सर पर नहीं आबैठता; तब तक उसके पैर ज़मीन पर नहीं पड़ते। इस गधा-पचीसीमें, आकाशमें छेद कर थेगरा (पैवन्द) लगाने का भी दुःसाहस होता है। इस उमर का नशा चढ़ता सब पर है। हाँ, थोड़े और बहुत की बात दूसरी है।

+ + + +

गधा-पचीसी उमर का एक मामोण युवक वर्षा ऋतु में बर्दवान और कलकत्ते के बीच पैदल जा रहा था। संयुक्तप्रांतके बरिबमी भागका रहने वाला था। माता-पितासे लड़कर कलकत्ते

की ओर कामकी खोजमें चल पड़ा था । नई उमर—
 सो भी गधा-पचीसीकी—काम की लगन और कलकत्तेके
 आकर्षणने उस युवकके शरीरमें बिजली-सी दौड़ा दी थी ।
 उसने खयाल किया कि अब तो मैदान मार लिया है । ६०-७०
 मीलका चलना ही क्या । दो सपाटोंमें ही कलकत्ता जा
 पहुँचूँगा और घर लौटनेका तब तक नाम न लूँगा, जब तक
 हजार-दो हजार रुपये पल्ले न हो जायेंगे । हाथोंमें अगूँठी,
 कानमें बाला, गलेमें कण्ठा और मुण्डा जूता पहन कर चर-चर
 करके, गाँवमें निकलूँगा तो मेरी अमीरी और खूबसूरतीकी
 चर्चा कानों कान कोसों तक फैल जायगी । मेरे विवाहके लिए
 चारों ओरसे स्त्रवरे आने लगेंगी । अम्मा मेरे निहोरे करेगी
 और कक्का मुझे मनावेंगे कि बेटा, विवाह करले; पर मैं सिगरेट
 का कश खींचते हुए कहूँगा कि किसी खोचड़के यहाँ मैं विवाह
 नहीं कर सकता । ऐसे सुखद वित्र खींचता हुआ वह युवक
 कलकत्ताकी ओर बढ़ा चला जा रहा था ।

दिन ढलता और शाम होने आई, पर उसकी गति न ढली ।
 इधर शाम के होते ही श्याम घटा गहरी हुई । आसमान पर
 रात्रिकी काली अलकें बिखरी पड़ी थीं । बिजली चमकी अथवा
 रातने दाँती पीसी । मूसलाघार पानी गिरने लगा । सहस्र
 नेत्रोंसे अश्रुपात होने लगा और आकाश तथा पृथ्वीका सम्पर्क
 हो गया । युवकका विचार-तिलस्म टूट गया । पानी से लथपथ-
 व्यग्र होकर वह पास वाले गाँवकी ओर भागा और सबसे पहले
 मकानकी ओर कातर दृष्टिसे चकित मृगशावककी भाँति देखता

हुआ उस ओर बढ़ा। ठीक वैसे जैसे बाजसे पीछा किये जानेपर चिड़िया आदमियों की ओर उड़ आती है।

फूँससे पटे मकान के बाहर एक चबूतरा था और उस पर एक बूढ़ा ध्यान-मुद्रामें मग्न बैठा हुआ हुक्का पी रहा था। प्रत्येक कशके साथ मानो वह अपने दिनके गुबार निकाल रहा हो। मेह बरसने और हुक्का की गुड़-गुड़में होड़ लगी हुई थी। हष्ट-पुष्ट पछैयाँ युवकको अपनी ओर आते देख उसने हुक्का पीना बन्द कर दिया और उसको ओर देखने लगा। वह बोला नहीं; पर उसकी आँखें साफ बोल रही थी। युवकने पास आकर कहा—“मैं आजकी रात ठहरना चाहता हूँ। परदेशी हूँ। बस बाहर इसी चबूतरे पर पड़ा रहूँगा। आप कौन बिरादरी हैं?”

बूढ़ा —“तुम कौन लोग हो?”

युवक—“कुछ सहमते हुए— मैं तो ब्राह्मण हूँ।”

बूढ़ा—“हम भी ब्राह्मण हैं, कोई बात नहीं है। ठहर जाओ।”

युवक—“तो भगवान् की कृपा ही हुई जो पहला मकान ब्राह्मण का ही मिल गया। पानी-फानो पीनेकी दिक्कत न रहेगी चने मेरे पास हैं ही।”

बूढ़ेने उस युवकको नीचे से ऊपर तक देखा। वह उससे बात तो करता जाता था, पर उसके मन में भीतर ही भीतर विचारों की कोई दूसरी ही धारा बह रही थी। तूफानसे नदीमें धारासे विपरीत दिशा को लहरें उठती हैं; पर धारा उन बाह्य लहरों के नीचे अपनी चालसे चली जाती है। बूढ़े के मन की धारा भी ठीक वैसे ही चल रही थी; उसने युवकसे कहा, “यह बंगाल

है। भीगे कपड़े न पहनो। न मालूम यहाँ कौन-सी बीमारी लग जावे।”

युवक—“कोई बात नहीं है। एक रातका क्या गुज़ारना। सोते काटी तो क्या, जागते काटी तो क्या? आप मेरे बारे में कुछ चिन्ता न करें। आपकी यह कौन कम कृपा है कि एक अजनबी आदमी का ठहरनेके लिये स्थान दे दिया।”

बूढ़ा—“पच्छिमके आदमी भले होते हैं। यहाँके किसी बात्रीको मैं अपने द्वार पर खड़ा तक न होने देता। यहाँ पर छल-कपट बहुत बढ़ गया है।”

युवक—“मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि नदियोंके साथ ऊपर का सब मैल इधर ही आगया है।”

बूढ़ा—“सो नहीं। यहाँ की हवा ही ऐसी है। हाँ, मैं तुम्हें एक धोती और कपड़ा लाये देता हूँ। सूखे कपड़े पहनलो। भीगे कपड़ोंको सुखा दो। कहीं बुखार आगया तो लेनेके देने पड़ जायेंगे।”

बहुत आग्रह करने पर युवकने बूढ़ेकी दी हुई धोती पहन ली और वह चारपाईपर बैठ गया। बूढ़ेकी सहानुभूतिने तो उसकी सारी थकावट दूर करदी और फिर गप-शप होने लगी। बातोंके दौरान में बूढ़ेने कहा—“तुम इतने बड़े होगए और जनेऊ नहीं पहना ! यहाँका कोई ब्राह्मण ऐसा नहीं कर सकता।”

युवक—“हम लोग कोरे देहाती हैं; खेतो करते हैं। जनेऊ बिबाहके समय पहनते हैं।

बूढ़ा—“अच्छा ! तुम्हारा अभी विवाह नहीं हुआ।”

युवक—“अभी नहीं हुआ। बीसों जगहसे विवाह आये; पर कुछ न कुछ खोट निकलती थी। कहीं लड़की काली मिलती थी तो कहीं घर अच्छा नहीं मिलता था। इसी झगड़ेके मारे तो मैं और भाग आया हूँ; अब कमा कर कुछ ले जाऊँगा तो किसी अच्छे घरमें विवाह करूँगा।”

बात करते-करते खानेका सवाल आया और बूढ़े ने उसे आग्रहपूर्वक भोजन करनेको राशी कर लिया। उस दिनका-सा भात और शाक उसने अपने जीवन-भरमें न खाया था। ऐसी खातिर उसकी कहीं नहीं हुई थी।

अगले दिन जब युवक चलने लगा तब बूढ़ेने कहा, “खाना तैयार है, खाकर जाना, ऐसी क्या जल्दी है। बुढ़िया न जाने तुमपर क्यों प्रसन्न है। और मेरी राय तो यह है कि कुछ दिन यहीं रहो। कलकत्तेमें क्या खजाना रखा है? कलकत्तेका तो नाम ही नाम है। वहाँ तो रुपया वालोंकी ही तूती बोलती है। मेहनती-मजूर तो वहाँ मर रहे हैं। उनका सत निकाला जा रहा है। कोई बीमार पड़ जाय तो कोई पूछना ही नहीं। चठा कर हुगलीमें फेंक देते हैं। किसीने छुरी भोंक दी तो मौं-चाप बिजलते हो रह जायेंगे। और सुना, हम भी ब्राह्मण हैं। हजार-दो हजारकी पूँजी मेरे पास भा है। मकान है, ज़मीन है। मेरे कोई लड़का भी नहीं है। अब काम भी नहीं होता। घरमें मेरी एक बड़ी शऊर वाली लड़की है। कई लड़कोंने विवाहके लिए ख़बर भेजी है; पर मैं अपनी नेक लड़की को भावमें बंधे ही भोंक दूँगा।”

विवाह-प्रस्तावसे युवक स्तम्भित रह गया। सुन्दर केशों वाली युवतीके विशाल नेत्र वह प्रातःकाल ही देख चुका था। गौर वर्ण न था, पर सौन्दर्य कोई रंगपर थोड़े ही है। युवकके सम्मुख कितना बड़ा आकर्षण था। घर घूरेके साथ उसे विवाहमें एक कुलीन ब्राह्मणका सुन्दर युवती मिल रही थी। ऐसे दिव्य अवसर को कोई मूर्ख ही भले छोड़े। आदर्शवादी छोड़ सकते हैं; पर गधा-पच्चीसी उमरके कितने युवकोंका आदर्श कामिनी और काञ्चन—वह भी विवाहमें—के सम्मुख ठहर सकता है ! युवती बंगालिन के बालोंमें युवकका मन उलझ गया। विवाह होगया और वह वहीं रहने लगा।

नई उमर और नया विवाह—गिलोय और नीम चढ़ी। वह युवक घर वालोंको बिलकुल भूल गया। नवीन जीवनका जादू चढ़ गया। रहते-रहते उसे वहाँ कई महीने होगए। एक दिन बूढ़ा और उसका दामाद बैठे हुक्का पी रहे थे कि सामनेसे एक आदमी आता दिखाई पड़ा। दूरसे ही उस आगन्तुकने कहा, “अरे बुलाकी, तू कहाँ ?” उस आदमीको देखकर बुलाकीका रंग पीला पड़ गया, और संकेतसे उसे अलग ले जाकर कहने लगा, “पाण्डितजी पाय लागू। मांपै बड़ो कसूर बनि गयौ है। अब हूँ गाम जाइवे लाइक ना रहौ। जाँ मैंने एक बिरामन (ब्राह्मण) की खरकिनी सूँ (से) बियाउ कल्लओए।”

पाण्डितजी—“नउआशारे तै,ने बड़ो पाप करो।”

बुलाकी—“का करूँ। अब तौ फँसि गयौ। घरे आइवे खायक ना रहौ। हूँ तुम्हें बैठारि हूँ न सकतु। पालागें।”

बूढ़ेने आगन्तुक और अपने दामादकी बातें तो नहीं सुनीं पर उनकी चेष्टासे उसे कुछ दालमें काला जरूर मालूम हुआ। जैसे ही उसका दामाद लौटकर आया तैसे ही खेतपर जानेके बहानेसे बूढ़ेने लकड़ी उठाई और खेतकी ओर गया; पर चक्कर काटकर उसने उस आगन्तुकको जा पकड़ा और पूछा—

“तुमसे और तुम्हारे देश वाले जवानसे क्या बातें हुईं?”

आगन्तुक—“क्या करोगे पूछकर?”

बूढ़ा—“कुछ हर्ज है बताने में?”

आगन्तुक—“वह जातका नाई है। यहाँ ब्राह्मण बनकर एक ब्राह्मण-कन्यासे विवाह कर लिया है। मैंने, इसीलिए उसे फटकारा था।”

x

x

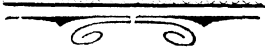
x

x

लौटकर बूढ़ा घर आया उसके चेहरे पर क्रोध मिश्रित हास्य था। अपने एक हाथको दूसरे हाथपर इस प्रकार चलाते हुए जैसे नाई उस्तरेको बढ़ीपर चलाता है बोला—“तुम अपनी जात बदलकर और धोका देकर हमें ठगना चाहते थे। सो तुम नहीं कर पाये। तुमी ऐमुन तैमुन (एक हाथ दूसरे पर उस्तरेकी भौंति करते हुए) तो आमी (मैं) तिरिकिटता।”

बूढ़ेने ऐमुन तैमुन कहनेमें एक हथेलीपर दूसरा हाथ उस्तरेकी भौंति चलाया और तिरिकिटता कहनेमें अपना सीधा हाथ बाईं बाँहपर होकर-छुरीकी भौंति तेजीसे उँगलियों तक फेरा जैसे छुरी से बाँसकी पच्चटें काटते हैं।

इदन्नमम्



जेलके अहातेमें कैदियोंका निरीक्षण करता हुआ गवर्नर जैसे ही निकला, वैसे ही उसे सम्बोधन करके एक कैदी चिल्लाया—
“त्राहिमाम् ! त्राहिमाम् ! मेरे मालिक, मेरी रक्षा करो ! ये मुझे अकारण ही मार डालेंगे ।”

“तुम्हें कौन मार डालेगा ?”—गवर्नरने रुककर पूछा ।

“पिस्सू, जूँ और खटमल, मेरे स्वामी ! और कोई नहीं । ये मुझे बेहद सताते हैं, और मेरे जीवनको उन्होंने असह्य बना रखा है”—कैदीने अकृत्रिम भावसे उत्तर दिया ।

कैदीकी प्रहसनपूर्ण याचनासे गवर्नरको हँसी आ गई, और वार्डरको आदेश देते हुए उसने कहा—“इसको पहननेके नए कपड़े और एक ओवरकोट दो ।”

“हुजूरका बड़ा ही कृतज्ञ हूँ ; पर साथ ही क्या मुझे स्नानागारमें स्नान करनेकी आज्ञा न मिलेगी ?”—कैदीने गिड़गिड़ाकर विनय की ।

कैदीकी वह बात भी मान ली गई ।

+ + + +

कैदीका नाम था मुश्किन, और उसको कारागार हुआ था पासपोर्टके अभावमें । यह बात न थी कि उसके पास पासपोर्ट न था । था । पर उसकी खोजमें पुलिस ऐसी पड़ी थी, जैसे शिकारकी गन्धपर शिकारी कुत्ते । इसलिए उसने अपना पासपोर्ट फाड़-फूड़कर फेंक दिया था, ताकि पुलिसको उसके नाम और धामका पता न चले । गिरफ्तार होने पर पासपोर्ट न मिला, और वह उसी अपराधमें दण्डित हुआ ।

मुश्किन युवक था—आकृतिसे सुन्दर और सुसंस्कृत ; हाव-भावसे दृढ़ और स्थिर ; चरित्रमें निर्भीक और नैष्टिक सदाचारी ; और विचारोंमें रूसी लोगोंकी स्वतन्त्रताका अदम्य पुजारी । उसकी नस-नस और रोम-रोममें देश-प्रेमकी बिजली दौड़ी हुई थी । अपने देशपर वह दीवाना था—अलमस्त पुजारी, देश और सिद्धान्तकी बाज्जीपर अपना सर्वस्व लगानेवाला खिलाड़ी, और इसीलिए पुलिसवालोंको चकमा देनेवालोंमें नम्बर एक और कार्य-साधनके लिए अपने उपजाऊ दिमागसे हजार तरकीबें सोच निकालनेवाला, कौशलकी सजीव प्रतिमा ।

मुश्किनको जब पासपोर्टके अपराधमें दण्ड मिला, तब जेलमें वह एक अनन्य राज-भक्त प्रजाकी भाँति रहा । उसने अपने एक मित्रसे स्नानागारमें जाने और वहाँ उसके कपड़े बदल और पहनकर भाग जानेकी खबर कर दी । सहायताके लिए मित्र भी

तैयार हो गया ।

+ + + +

सार्वजनिक स्नानागारमें दो सिपाहियोंकी देख-रेखमें मुश्किन को लाया गया । कपड़ा उतारनेके कमरेमें लोग हू-हू कर रहे थे । कोई किसीके धक्के मार रहा था, तो कोई हँसी-दिल्लीगीमें मस्त था, और कोई स्नान करके कपड़े पहनकर लौट रहा था । जिसको जहाँ स्थान मिलता, वहीं अपने कपड़े उतारकर स्नानागारमें चला जाता ।

जब मुश्किन वहाँ लाया गया, तब उसने अपने मित्रको एक कोनेमें अपने कपड़े उतारते देखा । मुश्किनने भी कपड़े उतारे । एक सिपाही उनकी देखभालके लिए रह गया, और दूसरा कपड़े उतारकर स्नानके लिए उसके पीछे गरम कमरेमें चला गया ।

साबुन शरीरमें खूब मला जाने लगा, और जैसे ही साबुनके झागोंसे सिपाहीका चेहरा और सिर ढका, वैसे ही मुश्किनका मित्र उसके स्थानमें आ गया, और मुश्किन चुपचाप, पर अविचल दृढ़तासे, गरम कमरेके अर्ध-अन्धकारसे निकला और क्षण-भरमें अपने मित्रके कपड़े पहनकर नौ-दो-ग्यारह हो गया । उसका मित्र उस समय तक शरीरको मलता रहा और स्नान करता रहा, जब तक उसने समझा कि मुश्किन अपने छिपावके स्थान तक पहुँच गया होगा । फिर कपड़े पहननेके कमरेमें आकर उसने शोरगुल मचाना शुरू किया कि किसीने मेरे कपड़े चुरा लिये हैं । स्नानागारमें तहलका-सा मच गया, तलाशी ली गई ;

पर मुश्किनके जेलके कपड़ोंके अतिरिक्त मुश्किनका कुछ पता न चला ।

उधर मुश्किनके मित्रने सन्देह-निवारणके लिए लाल-पीली आँखें दिखाईं कि मैं सेण्ट-पीटर्सबर्गके केन्द्रीय अधिकारियोंको लिखूँगा कि सार्वजनिक स्नानागारमें क्रैदी ऐसी लापरवाहीसे लाये जाते हैं ।

+ + + +

मुश्किनने एक बनावटी नामसे सेण्ट-पीटर्सबर्ग जाकर एक कला-कौशलकी संस्थामें अपना नाम लिखा लिया ; पर उसका विद्याध्ययन वहाँ अधिक न चला । रूसी उपन्यास-लेखक तथा अर्थशास्त्र एवं राजनीतिके पण्डित निकोलाइ चरनिशेवस्की (Nicolai Gavrilovich Tchernishovski) को बचानेके लिए उसने एक अति साहसिक योजना रची । वह जानता था कि अपनी जानपर खेलकर ही चरनिशेवस्कीको बच्चा सकता है, और मुश्किनके लिए अपने देशके लिए कुछ कर बैठना एक खिलवाड़ था । जो अपने जीवनसे फाग खेलनेके लिए चौबीसों घण्टे तैयार हो, उसे विघ्न-बाधासे क्या डर ? जीवन रहे, न रहे—इसकी उसे क्या चिन्ता, फिर चरनिशेवस्की तो उस समयके रूसके युवकोंके लिए अवतार, देवदूत और आदर्श रहनुमा था । उसके एक-एक शब्द—राजनैतिक और आर्थिक—और उसकी कलमकी प्रखरतापर रूसी युवक निछावर थे । चरनिशेवस्कीके ऊपर हजारों युवक कुर्बान होनेको तैयार थे । उनमें

मुश्किन तो साहस, धैर्य, सूझ और देशपर मर-मिटनेकी लालसा की जीती-जागती मूर्ति था ।

रूसी युवक हज़ारोंकी संख्यामें अपने गुरुके लिए बलि चढ़ने को तैयार थे । वे चाहते थे कि उनमें से अनेकों मर-मिटें ; पर चरनिशेवस्की अपनी लेखनीसे अमृत पान कराता रहे । हुआ यह था कि जारशाहीकी प्रबन्ध-संस्थाके तीसरे विभाग (Third Section of His Imperial Majesty's Bureau) को चरनिशेवस्कीके विषयमें एक गुप्त पत्र मिला था कि वह नवयुवकोंका नेता और धूर्त साम्यवादी है । बस, इतनी-सी रिपोर्टपर, बिना किसी मुक्तदमेके, चरनिशेवस्कीको पूर्वी साइबेरियाकी एक जेलमें निर्वासित कर दिया गया ।

कई वर्ष तक तो यह पता भी नहीं चला कि चरनिशेवस्की किस जेलमें रखा गया है । बड़ी खोज और वर्षोंके बाद पता चला कि अधिकारियोंने उसे उत्तर-पूर्वीय साइबेरियाके विल्युस्क नगरमें कैद रखा है ।

मुश्किनकी योजना थी कि वह पुलिस-कर्मचारीका वेश धरे और बनावटी शाही आज्ञा तैयार करे, जिसमें यह लिखा हो कि चरनिशेवस्कीको मुश्किनकी अधीनतामें सेण्ट-पीटर्सबर्गके निकट-वर्ती किलेकी कैदके लिए भेज दो । चूँकि कैदी एक स्थानसे दूसरे स्थानको बदले ही जाते हैं, इसलिए, इस प्रकारकी धाँधली तो चल सकती थी ; पर कठिनाइयाँ मुख्य योजनाकी न थीं, वरन् योजनाकी विस्तृत बातोंको व्यवहृत करनेकी । विल्युस्क नगर

सेण्ट-पीटर्सबर्ग (अब लेनिनग्राड) से हजारों मील दूर है । याकुट्सका सूबा, जिसमें विल्यूस्क नगर है, ग्रेट-ब्रिटेनसे तेरह गुना बड़ा है, और याकुट्स एशियाई रूसके नौ बड़े सूबोंमें से एक था । और उन दिनों साइबेरियामें न रेल थी और न तार था । इतनी लम्बी-चौड़ी यात्राका साहस करना और ऐसी यात्रा, जिसमें चारों ओर राजकर्मचारियों द्वारा पकड़ जानेका भय हो, साधारण काम नहीं था । एक बड़ी कठिनाई मुश्किनके लिए यह भी थी कि उसके पास यथेष्ट धन न था ।

जेबमें कई सौ रूबल डाल मुश्किन चल पड़ा । चलते-चलते वह इरकुट्स्क नगरमें पहुँचा और वहाँपर कामकी खोज करने लगा । शीघ्र ही उसने कई पुलिस-कर्मचारियोंसे जान-पहचान कर ली । सम्राट् और कट्टर ईसाई धर्मके प्रति उसने अटल भक्ति दर्शाई । क्रान्तिकारियोंके विरुद्ध भी उसने अपनी घोर घृणाका परिचय दिया । फलस्वरूप पुलिस-कर्मचारी उसपर मुग्ध हो गये, और पुलिसके कर्मचारियोंमें उसको एक अधीन स्थान मिल गया । कुछ ही दिनोंमें अपनी कर्तव्यपरायणता और परिश्रमसे मुश्किन अपने अफसरोंका कृपापात्र बन गया, और उसकी पदवृद्धि हो गई, जिसके कारण सरकारी गुप्त पत्र-व्यवहार उसकी देखरेखमें आये । मुद्दर और कागजातसे उसने पूर्ण परिचय प्राप्त कर लिया । तब फिर उसने विल्यूस्कके गवर्नर कप्तान ज़िरकोफ़के लिए एक जाली आज्ञा-पत्र तैयार किया, जिसमें लिखा था कि आन्तरिक मन्त्री (The Minister-

of the Interior) ने निश्चय किया है कि चरनिशेवस्कीकी बदली आमू नदीपर स्थित ब्लागोवेशचैक स्थानपर की जाती है, और क्रैदी का चार्ज मुश्किनको दे देना चाहिये ।

चरनिशेवस्कीके लानेके लिए उसने क्या-क्या सोचा था, सो तो ठीक पता नहीं; पर सम्भवतः उसने ब्लाडीबोस्टक पहुँचकर प्रशान्त महासागर द्वारा अमेरिका पहुँचनेकी ठानी होगी ।

+ + + +

किसी बहानेसे मुश्किनने अपनी नौकरीसे इस्तीफा दिया, और उसके सरकारी कर्मचारो मित्रोंको उसके त्याग-पत्रसे बड़ा ही खेद हुआ । त्याग-पत्र देकर उसने विल्यूस्ककी राह पकड़ी । विल्यूस्क यहाँसे कई सौ मीलकी दूरी पर था ।

मुश्किनने पुलिस-कप्तान का रूप धारण किया, पड़ावोंसे घोड़े लेकर सरकारी आकृतिमें वह शानके साथ कप्तान जिरकोफ़के मकानके सामने जाकर रुका । अपना परिचय देकर उसने जाली आज्ञा-पत्र कप्तान जिरकोफ़को सौंप दिया, और अपनी उत्तेजनाको छिपानेके लिये उसने बड़े मजेसे बातें करनी प्रारम्भ कीं ।

“चरनिशेवस्कीका चाल-चलन कैसा है ?”

“बहुत अच्छा । उससे हमें कभी कोई शिकायत नहीं रही है”—जिरकोफ़ने उत्तर दिया ।

“ये राजनैतिक क्रैदी अब्बल नम्बरके धूर्त होते हैं । इनका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये । परमात्माकी कृपासे इनका दमन कर दिया गया है, और अब हम लोगोंको दम मारनेकी

फुरसत है। देखो, कप्तान, मेरे पास अवकाश नहीं है। मैं यही चाहता हूँ कि जहाँ तक हो सके मैं आज ही लौट जाऊँ। मेरे खयालसे चरनिशेवस्कीके पास अधिक सामान तो होगा ही नहीं”—मुश्किनने आत्म-विश्वासकी ध्वनिमें ये बातें कहीं।

“ओ, नहीं, उसको एक घण्टेमें तैयार कर दिया जायगा ; पर क्या आप मेरे ऊपर इतनी कृपा भी न करेंगे कि मेरे यहाँ भोजन करें ?”—कप्तान ज़िरकोफ़ने आग्रहसे कहा।

“अनेक धन्यवाद। अच्छी बात है ; पर आपको मालूम होना चाहिये कि यदि हम लोग कर्तव्यकी अपेक्षा भोजनका खयाल करेंगे, तो नौकरीकी उन्नतिमें बाधा पड़ेगी”—गम्भीर भावसे मुश्किनने कहा।

ज़िरकोफ़ जेलमें गया, और उसने चरनिशेवस्कीको बदलीका समाचार भी सुना दिया ; पर थोड़ी देर बाद उसे आगन्तुक कर्मचारीके प्रति संदेह हुआ। वह इसलिये कि राजनैतिक कैदी का चार्ज लेनेवाला अफ़सर अकेला कैसे आया। उसके साथ कुछ शरीर-रक्षक तो होने चाहिये थे।

लौटकर ज़िरकोफ़ने मुश्किनसे कहा—“कैदी कल जा सकेगा, तब तक आप आराम करें।”

बेचारे मुश्किनको उसकी बात माननी पड़ी, और अपनी आन्तरिक वेदना छिपानेके लिये उसने ज़िरकोफ़से ख़ूब गपशप लड़ाई ; पर भीतर-भीतर वह इस बातको महसूस कर रहा था कि धनाभाव न होता, तो वह अपने साथ दो-तीन मित्रोंको शरीर-

रक्तक या गारद बनाकर लाता ।

अगले दिन प्रातःकाल ज़िरकोफ़ने एक नई तजवीज़ ही मुश्किनके सम्मुख रख दी और विनयपूर्वक कहा—“लम्बी यात्रा के बाद आप सुखकी नींद सोये होंगे, और आप अभी यहाँ और रहें । आप जानते हैं कि मेरे निकट-अधिकारी गवर्नर चरनेफ़ कितने कड़े और नियमके पावन्द हैं । मेरे लिये यह अनुचित होगा, यदि मैं उनकी अनुमतिके बिना किसी राजनैतिक क़ैदीको चला जाने दूँ । मुझे तो आज़्ञा उन्हींसे मिलनी चाहिए । कम-से-कम मैं उन्हें सूचना तो दे दूँ ।”

ज़िरकोफ़की बातसे मुश्किनपर वज्रपात-सा हुआ, और उसका रंग पीला पड़ गया ; पर अपनी भावनाओंको काबूमें करते हुए उसने शान्त भावसे कहा—“शाही हुक्मके सामने गवर्नरका हुक्म कोई चीज़ नहीं, और आन्तरिक मन्त्री अपने निर्णयके लिये किसी अधीन अधिकारीकी स्वीकृति आवश्यक नहीं समझता ।”

ज़िरकोफ़ने चितायुक्त विनयसे कहा—“बेशक । आपकी बात औचित्यपूर्ण है । गवर्नर चरनेफ़ केन्द्रीय सरकारके कार्योंकी आलोचना करनेका साहस भी नहीं कर सकते ; पर तनक मेरी स्थितिमें अपनेको रखिये । मैं बाल-बच्चेदार आदमी हूँ । बीबी है । बच्चे हैं । श्रीमान् गवर्नर साहबकी तनक-सी अप्रसन्नतासे मेरा सर्वनाश हो जायगा ।

“तब फिर क्या करने का विचार है ?”

“मैं एक हरकारेको घोड़ेपर अभी भेजता हूँ। पाँच-छै दिनमें वह याकुटस्कसे लौट आयगा। ऐसा करनेसे मैं अपना कर्तव्य पूरा कर लूँगा, और फिर आप चरनिशेवस्कीको जहाँ चाहें, ले जायँ। असल बात यह है कि मुझे जितनी चिन्ता चरनिशेवस्कीकी है, उतनी और किसी क़ैदीकी नहीं। यदि उसकी बदली यहाँसे हो जाय, तो मैं तो अपना भाग्य सराहूँगा। यों तो चरनिशेवस्कीकी ओरसे कोई शिकायत नहीं; पर आप जानते हैं कि रूसी नवयुवकोंका वह लाड़ला है, इसलिये सरकार उसे सबसे अधिक ख़तरनाक निहिलिस्ट समझती है।”

मुश्किनने समझ लिया कि ज़िरकोफ़पर कोई चाल न चलेगी, और उसके सामने अब प्रश्न था स्वयं अपने बचावका। एक मिनटके विचारके उपरान्त उसने उत्तर दिया—“आपकी कर्तव्य-परायणताका मैं बहुत क़ायल हूँ। आपकी इस बातकी चर्चा मैं आन्तरिक मन्त्रीसे भी करूँगा, सम्भवतः आपको वृद्धि-स्वरूप यूरोपीय रूसमें कोई अच्छा स्थान मिल जाय। रही गवर्नरकी बात, सो यहाँपर प्रतीक्षा करनेकी अपेक्षा मैं यह उचित समझता हूँ कि मैं ही स्वयं जाकर उनसे भेंट कर लूँ, इसलिए मेरे घोड़े भी शीघ्र तैयार कराइये।”

“अभी कराता हूँ। साथ ही मैं यह भी उचित समझता हूँ कि आपके साथ दो क़ज़्ज़ाक (कौसक) सिपाही भी जाँय, क्योंकि इस इलाक़ेमें यह रिवाज है कि शाही कर्मचारियोंके साथ कुछ सवार ज़रूर हों”—ज़िरकोफ़ने कहा।

इस प्रस्तावको अस्वीकार करनेके मानी थे ज़िरकोफके सन्देहका प्रमाण और फलस्वरूप मुश्किनकी गिरफ्तारी, इसलिये बनावटी मुसकराहटसे मुश्किनने कहा—“अनेक धन्यवाद इस कृपाके लिये । आप तो शिष्टाचारकी मूर्ति हैं । यद्यपि मैं अपने लिये किसी साथीकी कोई आवश्यकता नहीं समझता ; पर इस इलाकेमें उनकी अत्यन्त आवश्यकता है ।”

+ + + +

दो बलशाली कृञ्जाक सिपाहियोंके साथ मुश्किन याकुटस्क की ओर चल पड़ा । मुश्किन स्वयं बहुत ही स्वस्थ और मज्जबूत था; पर वह जानता था कि खुले मैदानमें वह उन दो सिपाहियोंसे पार न पा सकेगा । सिपाहियोंके व्यवहारसे मुश्किनको स्पष्ट हो गया कि उन्हें उसको आँखसे ओझल न होने देनेकी गुप्त आज्ञा थी ।

विल्यूस्क और याकुटस्कका मार्ग सघन वनों और बड़े-बड़े पहाड़ोंके बीचसे था । ध्रुव-प्रदेशके सौन्दर्य और विल्यू और लीना नदियों की नयनाभिराम अनन्त शोभा चारों ओर थी । यदि उस मार्गमें कोई यात्री भटक जाय, तो फिर या तो वह भूख और शीतका शिकार होता है, या फिर भेड़ियों और भालुओंका । मनुष्योंकी आबादी वहाँसे सैकड़ों मील दूर थी, मुश्किनने सोचा कि उसके बचनेकी सूरत उसी समय तक थी, जब तक वह गार्डोंके साथ था, क्योंकि गवर्नर के यहाँ पहुँचकर अनेक आदमियोंकी अपेक्षा दोसे भुगतना सरल था । एक

दूसरी बात यह भी हो सकती थी कि गवर्नरके यहाँ पहुँचकर उसे भाँसा दिया जाय कि वह एक राजकर्मचारी है, और अभिवादनके लिये आना उसका कर्तव्य है, क्योंकि वह उस ओर आया हुआ था, और विल्यूस्ककी घटनाका गवर्नरसे जिक्र ही न किया जाय और दुआ-सलाम करके वह वहाँसे टरक दे। इसी प्रयोगके लिये उसने निश्चय किया; पर शीघ्र ही एक अड़चन आ गई। विल्यूस्ककी ओरसे एक घुड़सवार आया और दोनों क़ज्जाक़ सिपाहियोंसे मिला। मुश्किनने सुना कि उसने उनसे कहा कि उसे कुछ ज़रूरी कागज़ात लेकर उनसे पहले गवर्नरके पास पहुँचना है।

मुश्किनकी योजनाका गुड़ गोबर हो गया। वह जालमें फँसनेवाला ही था। उसके लिए यदि कोई अवसर बचनेका था, तो बस, गवर्नरके यहाँ पहुँचनेसे पूर्व ही था। उस इलाक़ेमें न कोई आदमी था और न आदमज़ाद; पर पुलिसके शैतानकी अपेक्षा उसने जङ्गलके भेड़ियों और भालुओं तथा भूख और शीतसे मरना कहीं अधिक अच्छा समझा। इसलिए उसने अपने भाग्यका पासा फेंका, और एकदम सघन जङ्गलमें फाँद पड़ा और लगा अन्धाधुन्ध भागने। दोनों क़ज्जाक़ सिपाहियोंने चिल्लाते हुए उसका पीछा किया और कई बार उसपर फायर किया; पर निशाना एक न पड़ा। एक सिपाही तो थककर रह गया; लेकिन दूसरेने उसका पीछा ही नहीं किया, वरन् उसको लगभग आ ही लिया होता कि मुश्किन एकदम मुड़ा और धायँसे

पिस्तौलकी गोली उसके रसीद की। चीखकर सिपाही गिरा। वह घायल ही हुआ था। मुश्किन चाहता तो उसे मार भी सकता था; पर वह तो स्वयं बचना चाहता था, और बचावके लिए ही उसने सिपाहीपर फायर किया था। मुश्किनकी परिस्थितिका अनुमान कल्पनातीत है। दिनमें गर्मी थी; और रातको भ्रमंकर शीत था, न सोनेका ठिकाना और न भोजन का प्रबन्ध।

कज्जाक सिपाहियोंके विल्यूम्क पहुँचते ही कप्तान ज़िरकोफ़ने एक विशाल शिफार-दल तैयार किया, जिसमें सैनिकोंने ही नहीं, बरन् और लोगोने भी भाग लिया। कप्तान ज़िरकोफ़ने घोषणा की कि जो कोई फ़गर अभियुक्तको ज़िन्दा या मुर्दा लायगा, उसे अथेष्ट पुरस्कार मिलेगा।

+ + + +

मुश्किन मिला—भूक, थकावट और शीतसे मृतप्राय। केन्द्रीय सरकारमे लिखा-पढ़ी की गई, और कई मासको कैदके उपरान्त वह यूरोपीय रुमके पेट्रोपेब्लोव्सके क़िलेको भेज दिया गया। उन दिनों पेट्रोपेब्लोव्समें राजनैतिक कैदियोंपर किये गये लोमहर्षकारी अत्याचारोंके नामसे कैदी कॉप उठते थे। मुश्किनको लाहेको जाकेट पहनाई जाती, चारपाईसे बाँधा जाता और पीटा जाता। उसके कराहने और चिल्लानेसे अन्य कैदी कॉप उठने; पर मुश्किनकी बलिष्ठ आत्मा स्रयाल करती कि उसकी आहें और उन्पीड़न अदृष्टरूपसे ज़ारशाहीको कमज़ोर कर रहे हैं। उसकी यातनाओंसे उसके देश-भाइयोंको सुख मिलेगा, और सर्वभाधारण सुखको कौन याद रखता है। दुःख और

आदर्श तथा देशके लिए भुगते हुए क्लेश और यातनाएँ आत्माके अमर आभूषण हैं, जिनको देशवासो इतिहास और हृदयमें सञ्चित करके रखते हैं। बस, इसी भावनासे मुश्किनने शरीरकी यातनाएँ भुगतीं।

उसपर मुक़दमा चला। सन् १८७८ के प्रारम्भमें उसको दस वर्षकी क़ैदका दण्ड मिला। उसके सब नागरिक अधिकार छीन लिये गये, और खारकोफ़के बन्दी-गृहमें उसे भेज दिया गया।

खारकोफ़के क़ैदखानेके विषयमें सरकारी जॉच-कमीशनकी रिपोर्ट थी कि वह मनुष्योंके रहनेके लिए सर्वथा अयोग्य है; पर मुश्किन उसीमें रखा गया था। उन्मत्त ज़ारशाहीके मतसे वह मनुष्य नहीं था, बरन् भयंकर राजनैतिक क़ैदी। खारकोफ़में राजनैतिक क़ैदो या तो पागल हो जाते थे, या छूनकी बीमारियों के शिकार। कहने-सुननेवाला कौन था। क़ैदखाना अपना, कर्मचारी अपने, डाक्टर अपने और रिपोर्ट अपनी। बस, राजनैतिक क़ैदी ही बेगाने थे। सो वे भी मर-मिटनेपर उतारू थे। उनमें से बहुतोंका मोटो था कि हम तो डूबेंगे ही; पर कभी यार ज़ारको भी ले डूबेंगे।

खारकोफ़में भी वीर मुश्किन चुप न था। कष्टों और यातनाओंके सहनेपर भी उस वीरकी सूझ और धैर्यका अन्त न हुआ था। तख्तेकी लकड़ी और अपने हाथोंसे उसने क़ैदखानेकी दीवारके नीचे एक सुरंग खोदनी प्रारम्भ की। थोड़ी-थोड़ी मिट्टी खोदता और सँभालकर उसको कमरेके चबूतरसे सटाकर रखता। रातों-रात यह काम करता और अपने कपड़ोंको एक मूर्तिके

आकाशमें रख देता, ताकि वार्डर आदि कोई उधर आकर झोंके, तो वह बैठा दिखाई दे।

महानोके परिश्रमके बाद उसकी सुरंग तैयार हो गई। बस, निकलने-धरका भाग काटना था। यदि वह जेलके कपड़ोंमें निकलता, तो कौरन ही पकड़े जानेकी आशंका थी, इसलिए उसने नये कपड़ोंकी योजना रची। जेलकी तिकड़मसे उसे कुछ पुराने कपड़े मिल गये, और उन्हींसे उसने अपने कपड़े तयार किये; पर दुर्भाग्य उसके पीछे पड़ा था। एक रातको जब वह सुरंगमें था, एक वार्डर उसके कमरेमें आया, और उसको—उसकी मूर्तिवो—सांत समझ जगाया। जब उसे धोखेका ज्ञान हुआ, तब वह चिल्लाया, क्रौंदखानेका विगुल बजा। मुश्किनको सुरंगसे खींचकर बाहर लाया गया और अति सुरक्षित कमरेमें रखा गया।

+ + + +

मुश्किनकी आशा-लता मुग्ध हुई। उसके धैर्य और उत्साह का स्वांत सूख गया। उसने समझा कि अपने अनेक साथियोंकी तरह वह भी पागल हो जायगा। उसके जीवनकी विचार-धारा पलट नहीं सकती थी। चली गंगा नहीं बहा करती, इसलिए उसने मृत्युका आह्वान किया। सूनीका हार या गोली खानेकी लालसा ही उसे थी। सो कैसे हो? इस कारण वह इस ताकमें था कि कोई ऐसा जुर्म करे, जिससे उसे फाँसीकी सजा मिले। इसी विचारमें उसने धर्मके नामपर गिरजाघर प्रार्थना करने जाने की इच्छा प्रकट की। संसारमें दोंग, दिखावटी पाठ-पूजा और

जुल्मका बहुत-कुछ भाईचारा है । धर्मके नामपर गिरजाघर ले जानेके मानी थे कि कैदीमें ज़ारशाहीके प्रति कुछ भक्ति-भाव शेष है । मुश्किन गिरजाघर ले जाया गया, और वहाँपर—कैदखानेके गिरजेमें—उसने एक अधिकारीपर चोट पहुँचाई । मुश्किनको बड़ा दुःख हुआ, जब फ़ैसलेमें उसे पागल कहकर आक्रमणके लिए बरी कर दिया गया ।

x

x

x

x

मुश्किनने भाग निकलनेकी फिर तर्कीब भिड़ाई । वह निकल भागा भी । उसकी दुस्माहसिक घटनाएँ सुरंगों और पहाड़ोंमें छिपने, दीवार फाँदने और चाल-चाल बचने और फिर गिरफ्तार होनेकी कहानी कुछ दिन चलती रही । फिर वह गिरफ्तार हुआ । अन्तमें जीवनसे निराश होकर उसने मरनेकी ठानी । दुःखी मुश्किनने अवसर पाकर फिर किसी अधिकारी पर हमला किया । फलस्वरूप उसको मनोवांछित दंड मिला । कोर्ट-मार्शल हुआ । १८८५ में किलेकी दीवारके भीतर सैनिकोंके दस्तेके सामने मुश्किन खड़ा किया गया, और एक-दो-तीन बॉय-बॉयकी कम्पित ध्वनिमें मुश्किनका शरीर लड़खड़ाकर धरा-शायी हो गया । गिरते हुए हाथ मानो कहते थे—‘मेरे शरीरकी आहुति सफल हो ; पर यह आहुति मेरे लिए नहीं है ।’ ❀

❀ (अंग्रेजी की पत्रिका ‘Wide World’ की चाहल के आधार पर सच्ची कहानी । —लेखक)

शिकार

(लेखक—श्रीराम शर्मा)

‘शिकार’ में क्या है? शिकार केवल बन्दूक और रायफल की धाँय-धाँय नहीं, उसमें प्राकृतिक दृश्यों का सजीव वर्णन, अद्भुत वीरता के रोमाञ्चकारी वृत्तान्त और मनोभावों का सूक्ष्म विश्लेषण है। गरीबों और किसानों के चरित्र-चित्रण को पढ़ कर आप मन्त्र-मुग्ध हो जायेंगे।

साहित्याचार्य स्व० पं० पद्मसिंह शर्मा ने लेखक की लेखन-शैली पर लिखा है—

“आपके लेखों का निशाना सीधा पाठकों के हृदय पर बैठता है। पढ़ने वाला लोट-पोट हो जाता है। आप ऐसा जीता-जागता चित्र खींचते हैं कि देख कर सहृदय पाठक आश्चर्य-चकित रह जाता है। लेखक की कलम चूमने को जी चाहता है। आपकी वर्णन-शैली बड़ी सजीव, भाव-विश्लेषण मनो-विज्ञान-सम्मत और भाषा विषय के अनुरूप बड़ी सुघड़ होती है।” छै चित्र, मूल्य कवल २॥)

संक्षिप्त संस्करण

‘शिकार’ का संक्षिप्त संस्करण भी प्रकाशित हुआ है, जो संयुक्त-प्रान्तीय हाईस्कूलों के लिए भी स्वीकृत हो चुका है। इस संस्करण का मूल्य है ॥३॥

प्राणों का सौदा

(लेखक—श्रीराम शर्मा)

इस पुस्तक की कहानियों को पढ़कर आपके मुँह से सहसा 'वाह-वाह' निकलने लगेगी। एक बार पुस्तक को हाथ में ले लीजिए फिर आप उसे बिना समाप्त किये हरगिज न छोड़ेंगे। हिन्दी-साहित्य में यह पुस्तक अपने ढङ्ग की अनोखी है। इसकी एक-एक कहानी पाठक के हृदय में बल-बलिदान और जीवन-जागृति की भावना भरे बिना नहीं रहती।

पण्डित श्रीराम शर्मा की कहानियों के इस अपूर्व संग्रह की उत्सुकता-पूर्वक प्रतीक्षा कीजिए। छपकर शीघ्र प्रकाशित होने वाला है।

मिलने का पता—

- १, व्यवस्थापक—शङ्कर-सदन, आगरा
- २, मैनेजर—जगन्नाथ-कुटीर,
किरथरा, पो० मक्खनपुर (मैनपुरी)

भाँसी की रानी लक्ष्मीबाई

(लेखक—श्रीराम शर्मा)

भाँसी की मरदानी रानी स्वनामधन्या श्रीमती लक्ष्मीबाई के नामी नाम से कौन परचित नहीं है ! उस वीर देवी की कीर्ति-पताका आज सारे भारत-वर्ष में फहरा रही है । लक्ष्मीबाई के वीरता-पूर्ण कार्य-कलाप को देखकर उनके विरोधियों को भी आश्चर्य से दाँतों-तले उँगली दबानी पड़ती है । पं० श्रीराम शर्मा ने उन्हीं वीर-विदुषी रानी लक्ष्मीबाई की जीवनी लिखकर अपनी जादू-भरी कलम का कमाल बड़ी खूबी के साथ दिखाया है । ऐसी ओजस्विनी भाषा में इस प्रकार वीर भावों से भरी लक्ष्मीबाई की जीवनी और कोई नहीं प्रकाशित हुई । पढ़ते ही शरीर में वीरता की बिजली कड़क जायगी और उत्साह से हृदय बल्लियों उछलने लगेगा । पहला एडीशन समाप्त होगया । दूसरा सुन्दर संस्करण छप रहा है । मूल्य लगभग ॥)

बोलती-प्रतिमा

(लेखक--श्रीराम शर्मा)

जुल्मों की आग में रात-दिन जलते और भूख की लपटों से झुलसते हुए गरीब किसानों की कथा का सजीव और स्वाभाविक चित्र देखकर दिल दर्द से तड़प उठता है और पीड़ित मनुष्यता के प्रति मन में स्वभावतः सहानुभूति की भावना उमड़ने लगती है । आज ही एक प्रति मँगाकर पढ़िए । मू० १॥॥)

डाक महसूल अलग ।

मिलने का पता--

१. व्यवस्थापक--शङ्कर-सदन, आगरा
२. मैनेजर--जगन्नाथ-कुटीर,
किरथरा, पो० मक्खनपुर (मैनपुरी)

C

ketopakhyun 0 4 0

. . . 0 4 0

4 Charit Charya . . . 0 14 0

5 Charitragathan, Hindi . . . 1 0 0

6 Chhatra Prakash . . . 0 12 0

7 Chitrawali, I . . . 1 8 0

8 " II . . . 1 8 0

9 " III . . . 1 8 0

10 Chitrawali . . . 2 0 0

. . . 1 0 0

